

रसरत्नाकर

जिसमें

शृंगारादि नवों रसों का सम्यक् वर्णन है

-रचयिता-

साहित्याचार्य बाबू जगन्नाथ प्रसाद भानु-कवि,

गिटायर्ड ई. ए. सी. बिलासपुर, मध्यप्रदेश ।

जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर में मुद्रित ।

सन् १९१९ ई०

प्रथम बार ।



PRINTED BY S ABDULIA MANAGER AT THE
"JAGANNATH PRESS" BILASPUR, C P
AND

PUBLISHED BY MR. B-JAGANNATH PRASAD
PROPRIETOR



विज्ञप्ति ।

प्रिय पाठकहृन्द !

काव्य प्रबन्धमाला की तीन पुस्तके १ छंद साएवली, २ काव्यालव
और ३ अलंकारप्रश्नोत्तरी आपकी भेट कर चुका हू आज यह चौ
पुस्तक "रसरत्नाकर" भी आपकी सेवा में सादर समर्पित है । इ
शृंगारादि नयों रसों का सुगम बोध निरूपण है । रमणीय काव्य में अत
किरु आनन्द प्राप्त होता है इसीलिये पूज्याचार्योंने कहा है 'वाक्य रसात्
काव्यम्' अर्थात् रसही काव्य की आत्मा है, परन्तु वह रस कैसे उत्पन्न हो
हे उसके लिये कौन कौनसी सामग्री चाहिये वन इसी का इत पुस्तक
सम्यक् वर्णन है यदि विद्यार्थीगण क्रमपूर्वक इसका पठन और मनन का
तो शीघ्रही पूर्णरूप से लाभान्वित होंगे । इत्यलम्

विनीत—

जगन्नाथ ब्रह्माद,

भानु कवि

॥ श्रीमुरलीधरायनमः ॥



विषयानुसार सूचीपत्र ।

नाम	पृष्ठ	Brief translation in English	नाम	पृष्ठ	Brief translation in English
रसोका सत्ति वर्णन	१	Brief description of sentiments	प्रत्यक्ष दर्शन	१०	Vision real
लक्षण विभाव	७	Definition	मान	१२	Pride
	७	Cause nourishing the main sentiment	लघुमान	१०	Slight pride
			मध्यममान	१०	Moderate-pride
आलवन	८	Person or thing with reference to which a sentiment arises	गुरुमान	१०	High pride
			प्रवास	१३	Foreign residence
शृगाररस	६	Erotic sentiment Sentiment of lover	अभिलाषा	१३	Desire
रसोग शृगार (सयाग)	६	Erotic sentiment in happy union of lovers	चिन्ता	१३	Anxiety
वेप्रलभ शृगार (वियाग)	१०	Erotic sentiment in painful separation of lovers	स्मरण	१३	Recollection
त्रिविध वियोग	१०	Separation 3 kinds	गुण कथन	१४	Praise singing
पूर्यानुगत	१०	Previous attachment	उद्वेग	१५	Agitation
श्रवण दर्शन	११	Vision by hearing	प्रलाप	१५	Non-sensical talk
चित्र दर्शन	११	Vision by a picture	उन्माद	११	Delirium
स्वप्न दर्शन	११	Vision in	व्याधि	१६	Painful condition of mind
			जडता	१६	Loss of faculty
			मूर्च्छा	१६	Epileptic convulsions
			मरण	१६	Death
			नायिका	१७	Heroine, a charming lady
			वगानुमार	१७	According to birth
			जात्यनुमार	१८	According to quality
			अन्य भेद	१८	Other divisions

स्वाधीनपतिका	३७	A woman having a passionately devoted husband	अनभिज्ञ	४४	Ignorant (of sexual pleasure)
अभिसारिका	३७	A woman afflicted with love either repairing to the house of lover or making him come to her	उप पति	४५	A paramour
प्रवक्ष्यत-पतिका	३७	A woman whose husband is about to go abroad	वचन चतुर	४५	Skilful in speech
आगतपतिका	३८	A woman expecting the return of her long absent husband	क्रिया चतुर	४५	Skilful in actions
नायिका भेदो का मन्त्रित वर्णन	४०	Brief summary of नायिका भेद	वैशिक	४६	A person who associates with harlots
नायक	४१	Hero a principal person	हास्य	४६	Comic
मानी प्रोषित	४२	Proud	करुण	४८	Pathetic
पति अनुकूल	४३	Husband	रोड	४९	Wrathful
दक्षिण	४४	Courteous, gallant	वीर	५०	Heroic
धृष्ट शठ	४४	Bold	गुह्यवीर	५१	Hero of war or valour
		A faithful husband devoted to his wife	दानवीर	५१	Hero in munificence
			दयावीर	५२	Hero in mercy
			धर्मवीर	५२	Hero in duty
			भयानक	५३	Terrible
			वीभन्स	५४	Disgustful
			अद्भुत	५५	Murvellous
		separated from his wife	शात	५६	Quietistic
			वत्सल	५७	Affectionate
			सख्य	५७	Friendship
			दास्य	५७	Servitude
			भक्ति	५८	A sense of devotion
			प्रयान्	५८	Deerer
			उद्दीपन	५८	Exciter of feeling
			सखा	५९	A male companion
			सखी	५९	A female companion

पीठ मर्द	५६	A clever companion in discourse who assists one in securing his mistress	विरह	६७	Feeling of love in separation
प्रि	५६	A cheat, a cunning chap	प्रबोध	६७	Awaking
चेष्टक	५६	Any one who does a set task skilfully	संघट्टन	६७	Encounter
विदुषक	६०	Jester, witty, humorous	स्वयदृतिका	६८	Self messenger
हितकारिणी	६०	Well wishing female companion	वसन	६८	Spring
व्यग्यविदग्धा	६०	A woman skilful in insinuations	होली	६६	Holi festival
अतरिणी	६०	A female companion in secrecy A confident	ग्रीष्म	७१	Summer
वहिरिणी	६१	An ordinary female friend	पावस	७१	Rains
मण्डन	६१	Adornment	हिंडोरा	७२	A swing
नखशिख	६१	Charming description of every limb of body from toe to toe	शरद	७२	Autumn
शिक्षा	६४	Advice	हेमत	७३	Winter
उपालभ	६५	Taunt	जिशिर	७३	Cold season
परिहास	६५	Joke	पवन	७४	Air, wind,
दुनी	६५	A female messenger	शातल	७४	Cold
नुति (स्तुति)	६६	Eulogy	मद	७४	Slow
			सुगंध	७४	Fragrant
			वन	७४	Forest
			चंद्र	७४	Moon
			उपवन	७४	Garden
			चादनी	७४	Moonlight
			पुष्प	७४	Flower
			पराग	७४	Flower, pollen
			अनुभाव	७५	External manifestation of internal feeling
			सात्विकअनुभाव	७५	Natural emotions
			स्तम्भ	७५	Immobility
			स्वेद	७६	Perspiration
			रोमाच	७६	Horriplation
			स्वरभग	७६	Indistinctness of utterance

चेपथु	७७	Tremor	विभ्रम	८०	Putting of ornaments in wrong places through flurry
वैचर्य	७७	Paleness			
अश्रु	७७	Tears			
प्रलय	७७	Loss of consciousness			
जम्मा	७८	Yawning	किलकिंचित	८०	Amorous agitation weeping laughing etc in society of a lover
कार्यिकानुभाव	७८	Bolily hints or emotions			
मानसिकानुभाव	७८	Mental emotions	कुट्टमित	८२	Affected repulse of a lover's endearments or caresses
हाव	७९	Coquettish gesture to excite love	विश्रोक	८२	Affectation of indifference tending to excite love
लीला	८०	Mutual amusement, diversion, pastime			
आहार्य	८१	Single amusement, pastime	मोटाहत	८३	Complete perversion of mind by affection towards an absent lover
विद्वत	८१	Reluctance to avow feelings to her lover when she ought to disclose them	हेला	८३	Insulting amour
विजास	८१	Feminine gesture indicative of amorous sentiment	बोधक	८३	Indicating
			सचारीभाव	८४	A transient feeling or emotion
लजित	८१	Gracefulness of gait or amorous gesture	निर्वेद	८४	Disgust for worldly pleasures
विच्छिन्न	८२	Carelessness or irregularity in dress or decoration through fancy etc, which nevertheless adds to her beauty	गतानि	८५	Languour
			शका	८६	Apprehension
			असूया	८६	Envy
			श्रम	८६	Weariness
			मद	८६	Intoxication

धृति	८६	Repose of mud, dete- mination	निद्रा	६३	Sleep
आलस	८७	Indolence	व्याधि	६३	Painful con- dition of mud
विपाद	८७	Despair	मरण	६३	Death
मति	८८	Prudence	अपस्मार	६४	Epileptic co- vulsions
चिन्ता	८८	Painful reflec- tion	आवेग	६४	Agitation
मोह	८९	Perplexity	भ्रस	६४	Fear
स्वप्न	८९	Dream	उन्माद	६४	Delirium
विबोध	८९	Waking	जडता	६४	Loss of fac- ulty
स्मृति	९०	Recollection	चपलता	९६	Rashness
अमर्ष	९०	Indignation	वितर्क	९६	Descrimina- tion
गर्व	९१	Pride	स्थायीभाव	९७	A permane- nt or lasting feeling
उत्सुक्ता	९१	Impatience			
अवहित्य	९१	Dissimula- tion			
दीनता	९१	Depression	रति	९८	Love
हर्ष	९२	Joy	हास	९९	Laugh
व्रीडा	९२	Bashfulness	शोक	१००	Sorrow

उत्साह	१००	Energy	रसाभास	१०४	The semblance or mere appearance of a sentiment
भय	१०१	Fear			
ग्लानि	१०२	Disgust	भावाभास	१०५	A false emotion
आश्चर्य	१०६	A wonder	समाहित	१०६	Adjusted, finished
निर्वेद	१०७	Disregard of worldly pleasures	भावोदय	१०६	Mercies of sentiment
स्नेह	१०३	Affection	भावसधि	१०७	The union of two contrary emotions
रसवत्	१०३	Appearing like a sentiment	भावशबलता	१०७	Coexistence of several emotions
प्रेयस	१०४	Dearer	रसदोष	१०८	Dements of sentiments
ऊर्जस्वित	१०४	Speaking with contempt			

भूल संशोधन ।

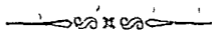
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	१६	गशि मे	गशि मे
१६	२३	कहुँ	कहँ
४७	२३	डारी तो	डारो ता
७५	६	मात्वि	सात्विक

औरहु याके दोष जे, लिखिहें सुजन विचारि ।

हैं कृतज्ञ देहां तिनहिं, पुनरावृत्ति सुधारि ॥

अथ

रसरत्नाकरः प्रारभ्यते ।



जय जय जय राधा रमण, हरण मोह भव शूल ।
रसिक शिरोमणि सावरे, सदा रहहु अनुमूल ॥

रसों का संक्षिप्त वर्णन ।

जब हम लोग किसी उत्तम काव्य को पढ़ते वा सुनते हैं वा किसी उत्तम नाटक को देखते हैं तो बहुधा कहा करते हैं कि वाह क्याही रमणीय वर्णन है, क्याही सुन्दर दृश्य है, यह निषय क्याही सरस है वम उसमें जो विशेष आनन्द प्राप्त होता है वही रस है यह एक प्रकार का मिलक्षण आनन्द है जो अनिर्वचनीय है साहित्य शास्त्र में ऐसे लोकोत्तर अर्थात् अलौकिक आनन्द को ही रस कहते हैं । अलौकिक आनन्द यह है जो स्वार्थ से रहित हो और जिसे आनन्द में स्वार्थ है वह लौकिक आनन्द है जैसे किसी मनुष्य ने जाकर किसी को आनन्द समाचार सुनाया कि आप के घर में पुत्र रत्न पैदा हुआ अथवा आप के वेतन की वृद्धि ५००) पाच सा से ६००) के साँ रुपये मामिक की हुई । इस समाचार से उसी को विशेष आनन्द होगा जिसका लाभ पहुँचा सप को नहीं क्योंकि इसमें स्वाध है ऐसे आनन्द को लौकिक आनन्द कहते हैं और उसी से यदि यह कहा जाय कि अमुरु सेठ उड़ा दानी है देखो कोई याचक उसके द्वार पर जाता है तो शीघ्रही पोर के किंजाल दे देता है घर में सप को गालिया दिया करता है, साधुओं को दोष देता है, यदि कहीं भिक्षुक से भेट हो गई तो जपान दे देता है, यात कहते रो देता है, लोते देते भाजी मार देता है, पगडी क बद बाध देता है, बालों की गाठ दे देता है, गंती की काढ़ देदेता है कहा तक कहीं विचार को देने के

भारं फुरसत ही नहीं मिलती । कहिये क्या कोई इसमें बढ़कर डानी हो सकता है ? तो इन वाक्यों के सुनने ही वह परमानन्दित होकर अवश्यही हँस पड़ेगा और निकटवर्ती श्रोताओं को भी विशेष आनन्द होगा वस यही अलौकिक आनन्द है क्योंकि यह स्वार्थ से रहित है और इसी कारण मनोहर भी है । यह आनन्द प्रायः कवि के काव्य रचना की कुशलता तथा अनूठी उक्ति का जानकर उत्पन्न हुआ करता है । रस ही काव्य की आत्मा है, कहा है “वाक्य रसात्मक काव्य” जिस रस का प्रिय में हम कह रहे हैं वह किम्बर सामग्री के संयोग से उत्पन्न होता है अब उम्मी का वर्णन करते हैं । रस का प्रादुर्भाव (विकाश) तभी होता है, जब प्रिभाव अनुभाव और सचारीभाव की सहायता से स्थायीभाव परिपक्व दशा पर पहुँचता है—

विभाषैरनु भावेश्च साल्लिकैर्व्यभिचारिभिः ।

आनोयमान, स्वाद्यत्व स्थायीभावोरस स्मृतः ॥

इनमें विभाव (कारण) अनुभाव (कार्य) और सचारी भाव (सहायक) हैं और जिसमें रस की स्थिति रहती है वह स्थायीभाव है । विभाव के दो भेद हैं एक आलवन और दूसरा उद्दीपन । अभी यह लक्षण सर्वसाधारण को सुगम बोध नहीं अतएव एक उदाहरण द्वारा इसका स्पष्टीकरण कहते हैं ।

वाणासुर की कन्या उषा स्वप्न में अनिरुद्ध को देखकर प्रेमासक्त होगई इस कथा प्रसंग में उषा और अनिरुद्ध आलम्बन हुए, सखी, उद्यान, चन्द्रमा, चादनी, आदि ऐसे पदार्थ हैं जिनसे वह प्रेम भडक उठता है ये पदार्थ उद्दीपन हुए इन्हीं आलम्बन और उद्दीपन कारणों से वह प्रेम उत्पन्न हुआ इन्हीं कारणों का नाम (प्रिभाव) है; जो प्रेम उत्पन्न हुआ उसका नाम रति (अत्यन्त प्रीति) यही रस का मूलरूप है और यही (स्थायीभाव) है प्रेम के कारण उसके कार्य कटाक्ष अंग विज्ञेपादि दिखाई देने, लगे इन्हीं से उस प्रेम या रति की प्रतीति हुई इन कार्यों का नाम है (अनुभाव) अब उस रति की पुष्टता स्मृति, चिंता, उत्कठा आदि के द्वारा पूर्ण हुई इन पुष्ट कारक वस्तुओं का नाम है (सचारी व्यभिचारी

वा महकारी) इन्हीं कारणों कारणों और महायज्ञों से रति (स्थायीभाव) स्पष्टतया प्रतीत होने जगत् और रस पहलाने के योग्य हुआ, यह शृंगाररस है एसेही समस्त रसों के विभाज अनुभाव, सचारी और स्थायीभाव अलग २ हैं जो आगे लिखे जायेंगे ।

काव्य और नाटक में कई = व कोई ८ रस मानते हैं यथा—

(८) शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र वीर भयानकाः ।

वीभर्त्साद्भुत सञ्ज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ॥

(९) शृंगार वीर वीभर्त्स रौद्र हास्य भयानका ।

करुणाद्भुत शार्ताश्च नवनाट्या रसास्मृताः ॥

किन्तीने एक और वास्तव्य रस मानकर १० भेद कहे हैं—

(१०) शृंगार वीर करुणाद्भुत हास्य भयानका ।

वीभर्त्स रौद्रा वात्सल्य शार्तश्चेति रसादश ॥

रस यथार्थ में नवही है दृश्य काव्य में शातरस उपयुक्त नहीं माना गया अतएव = ही भेद माने हैं । श्रव्य काव्य में शातरस उपयुक्त है अतएव ६ भेद माने हैं । वास्तव्य तो प्रेम और दया की, प्रधानता के कारण शृंगार और करुण का ही अंग प्रतीत होता है । पुत्रादिकों के प्रति जो स्नेहभाव है सो वात्सल्य कहाता है जैसे—पुत्रवत्सल, भक्तवत्सल, गुरुवत्सल वत्सल इत्यादि । कई भक्तिरस अलग मानते हैं परन्तु वह भी शातरस के अन्तर्गत है नाटकादि में मुख्य और हास और प्रेयान् तीन रस और पाये जाते हैं परन्तु वे भी शातरसतर्गत प्रतीत होते हैं हा प्रेयान् कभी२ भावानुसार शृंगार और करुण रस में भी वर्णित होता है विचार पूर्वक देखने से ज्ञात होगा कि शृंगार रस से हास्य की, रौद्र से करुण की, वीर से अद्भुत की और वीभर्त्स से भयानक रस की उत्पत्ति है शातरस पृथक् है । इन पांचो रसों के मन्त्रित उदाहरण शातरस के अन्तर्गत देखिये !

अब यहाँ नवों प्रधान रसों का सक्षिप्त वर्णन स्थायीभाव सहित नीचे लिखा जाता है—

नाम	सक्षिप्त व्याख्या	स्थायीभाव
१ शृंगार	स्त्री पुरुष का परस्पर प्रेम । इसके दो भेद हैं १ सयोग (सम्भोग), २ वियोग (विप्रलम्भ)	रति
२ हास्य	विगड़े हुए आकार उन्नत चेष्टा आदि	हास
३ करुण	दृष्ट नाग, जिसमें हृदय द्रवित हो वा दया उत्पन्न हो	शोक
४ क्रोध	शत्रु पर क्रोध	क्रोध
५ वीर	सदात्मनाह	उत्साह
६ भयानक	निम्नसे डर पैदा हो	भय
७ वीभत्स	दुर्गन्ध स्त्रि आदि घृणा उत्पन्न करने वाले पदार्थ	जुगुप्सा (ग्लानि)
८ अद्भुत	विस्मय (आश्चर्य) उत्पन्न करने वाले पदार्थ	विस्मय
९ शांत	शम, निर्वेद (वेराग्य)	शम

पहिले कह चुके हैं कि काव्य-रस में अलौकिक आनन्द है तो इसमें यह प्रश्न ही सकता है कि शोक वीभत्स भयानक रसों से क्या आनन्द होता है तो इसका सभ्यक उत्तर यही हो सकता है कि इसमें सहृदय रामझने वालों का अनुभव देख लीजिये इन रसों में यदि दुःख होता तो कोई उसके निकट जाने की इच्छा भी न करता यहाँ लौकिक शोक, हर्ष का प्रसंग ही नहीं, काव्य में तो अलौकिक भावों से मुख ही उत्पन्न होता है करुण रसके ध्वनि में तो अश्रुपात तक होता है क्योंकि इसके प्रमान में चित्त विप्रल उठता है जैसे हरिश्चन्द्र नाटकानि तथापि बारम्बार उसके देखने वा सुनने की इच्छा बनी रहती है यही इस बात का पूराप्रमाण है सांगण यह कि काव्य रस में आनन्दही आनन्द है इसलिये कहा है 'रस्यन्ते इति रसा' । अब नीचे लिखी सारिणी में इन समस्त रसों का सक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

विभाव (कारण)	विभाव (कारण)		अनुभाव (कार्य)	संचारीभाव (व्यभिचारी)	देवता	वर्ण
	आत्मभवन	उद्योपन				
२	३	४	५	६	७	८
रति	नायक नायिका	सखी, सखा, चंद्र चट्टिका, त्रसर, वन वाग भक्कार आदि	भू वित्तेप हान भाग कटाक्ष आदि	स्वप्न और सुषुप्त्य जागा, चिंता, लज्जा, उन्मादि-कादि	विष्णु	ग्याम
हास	कुरूप वेष जिसे देखे हँसी आवे	हास्यजनक व्यक्ति की चेष्टा आदि	निलज्जग प्रकार से हँसना मुरकराना आखें सिकोडना मटकना आदि	हर्ष शालस्य चणलतादि	प्रमथ	श्वेत
शोक	गोच्य वस्तु	गोच्य की दाहादि क्रिया	रोना देवनिद्रा दीर्घ श्वास बेराजी आदि	मोह, विषाद, जडता, आदि	वरुण	धवल
कोप	गुरु	शत्रु की चेष्टा	भ्रमण, होठ चवाना, नेत्रों का लाल होना, कप आदि	गर्व उग्रता मोह आक्षेप मुष्टिप्रहार आदि	रुद्र	लात
उत्साह	जिम्मे जीतने की इच्छा हो	गुरु की चेष्टा	सहाय दृढना आदि	धैर्य, अगस्त्युरण, नेत्रों की लालिमा, मति गर्व, तर्क, रामाच आदि	इन्द्र	गौर

१	२	३	४	५	६	७	८
६ मथानक	मय	मयंकर दर्शन	भयजनक वस्तु चेष्टा	नवराहट, कप, वेहोशी आदि	वास, दीनता, गद्गद भाषण आदि	यम	श्याम
७ धीमत्स	जुगुप्सा (ग्लानि)	रक्त, माम, अस्थि, मल, मृत्रादि	दुर्गंध आदि	शुक्रना, मुँहनाक मूदना रोमाच आदि	मोह, व्याधि, आवेग, आदि	महाकाल	नील
८ अद्भुत	विरमय	आश्चर्यकारी वस्तु	आश्चर्यकारी गुण वा कर्म	स्लम्भ, पसीना, रोमांच अम, नेत्रप्रिकाण आदि	तर्क, पित्तर्क, मोह, हर्ष आदि	गर्ध्व	पीत
९ शांत	गम	परमात्मा का स्वरूप सत्सार की नि सारता	तीर्थ सेवा सत्संग आदि	रोमाच आदि	धृति, मति, निवेद, हर्ष भूतदया आदि	नारायण	युक्त

रसादिके लक्षण ।

- (१) विभाव—कारण रस के आहिं जे, ते विभाव अवदात ।
 आलवन उदीपनहु द्योय भेद विख्यात ॥
 (आलवन) रस को हो अलव जहँ, आलवन है सोय ।
 (उदीपन) उदीपनहि विलोकिकै, रस उदीपित होय ॥
- (२) अनुभाव—कार्यरूप अनुभाव तें, रस को अनुभव होत ।
- (३) संचारीभाव—सहकारी सब रसन्कै, संचारिन के गोत ॥
- (४) स्थायीभाव—रसकी धिरता जाहि मे, थायिभाव उत्रोतै ।
 सां विभाव अनुभाव पुनि, संचारी मिलि होत ॥
 थायिभाव रति होम पुनि, शोक क्रोध उत्साह ।
 भय ग्लानिहु विस्मय बहुरि, निर्वेदहिं चित चाह ॥
- (५) रस—रस कहिये नव भाति के, प्रथम रुहत शृंगार ।
 हास्य करुण पुनि रौद्र गनि, वीर सुचारि प्रकार ॥
 बहुरि भयानक जानिये, पुनि वीभत्स वखान ।
 अद्भुत अप्ठम नवम पुनि, शांतरसहि उर आन ॥

प्रत्येक रस के आलम्बन, उदीपनादि अलगर होते हैं जैसे पहिले सारिणी में लिख आये हैं ।

१ मनोविवारों के मूल कारणों को विभाव कहत है माहिन्य दपण में विभाव का लक्षण यों है ।

रत्याद्युदोषका लोके विभावा काव्यनाख्ययो
 आलवतादापतायौ तस्य मेदावुभौ स्मृतौ ॥

विभाव शब्द का अर्थ है विशयभाव, परिचय ।

आलंबन विभाव (कारण)

जाफो थायिभाव रति, सो शृंगार सुहोत ।
 मिलि विभाव अनुभाव पुनि, संचारिन के गोत ॥
 रति कहियतु जो मन लगनि, प्रीति अपर पर जाय ।
 थायी भाव शृंगार के, भल भाषत कविराय ॥
 परिपूर्ण विभाव रति, सो शृंगार रस जान ।
 रसिकन को प्यारो सदा, कविजन कियो बखान ॥
 आलंबन शृंगार के, तिय नायक निरधार ।
 उहीपन सब सखि सखा, बन बागादि विहार ॥
 हाव भाव मुसक्यानि मृदु, 'इमि' औरहु जु विनोद ।
 है अनुभाव शृंगार नव, कवि जन कहत समोद ॥
 उन्मादिक सञ्चरत तहँ, संचारी है भाव ।
 कृष्ण देवता श्याम रँग, सो शृंगार रसराव ॥
 सो शृंगार द्वै भाति को, दम्पति मिलन संयोग ।
 अटक जहाँ कहु मिलन की, सो शृंगार वियोग ॥

भावार्थ स्पष्ट है । जैसे शरीर के सब अंगों में शिर, अस्तुओं में
 चसन्त, तैसेही सब रसों में शृंगाररस प्रधान है जिसके देवता अलंकार
 प्रिय श्री विष्णु भगवान अर्थात् रसिक गिरोमणि वृन्दावन विहारी
 श्रीकृष्णचन्द्र हैं इसी से शृंगाररस की गणना सब से आदि में की है
 कविवर श्री पद्माकर भट्ट कहते हैं—

नव रस में शृंगार रस, सिरे कहत सब कोय ।
 सुरस नायिका नायकहि, अलक्षित है होय ॥

शृंगाररस ही से नायिका भेद श्रोत प्रोत भरा हुआ है । कतिपय
 विद्वान नायिका भेद को मूर दृष्टि से देखते हैं यह उनकी भूल है क्या
 सस्कृत और क्या प्राकृत काव्य ग्रन्थों में नायिका भेद ही का प्राधान्य
 है । नायिका भेद केवल वाग्विलास है इससे मनुष्य सावधान होकर
 सभाचतुर होता है यह बात अवश्य ध्यान रखने योग्य है कि जहाँ तक

सरस वाग्म्यापार है वहीं तक नायिका भेद है। व्यभिचार में प्रवृत्त होने का नाम कदापि नायिका भेद नहीं है। नायिका भेद का ज्ञाता होकर मनुष्य अनेक बुराइयों से बचकर साधन और कार्य कुशल हो जाता है हा कथन में कोई बात मर्यादा के बाहिर न होनी चाहिये, अश्लीलता से अवश्य बचना चाहिये क्योंकि वह नीरस होने के अतिरिक्त सभ्य समाज में कभी समादन नहीं हो सकती है हमारे प्राचीन शास्त्रकार परम विद्वान और दूरदर्शी थे हम जागो के लिये वे जो एक से एक बढ़कर काव्यरत्न झोंड गये हैं उनसे हम को अवश्य लाभान्वित होना चाहिये।

(१) शृंगार रस ।

(सम्भोग) संयोग शृंगार

पिय प्यारी को मिलन जहँ, सो संयोग शृंगार ।

सोहत ललना लाल मँग, चक चकई अनुहार॥ यथा—

दोऊ जन दोऊ का अनूप रूप निरखत पावत कह न ह्विसागर को झोर हैं । चितामनि केलि के फलानि के विलासनि सो दोऊ जन दोऊन के चित्तन के चोर हैं ॥ दोऊ जने मद मुसकानि सुधा बरसनि दोऊ जने झुके मोद मद दुह शोर हैं । सीताजू के नैन रामचन्द्र के चकोर रामचन्द्र नैन सीता मुखचन्द्र के चकोर हैं ॥

दूहयो गृह काज तोऊ लाज मामोहनी का भूयो मन मोहन को मुरली बजावो । देवो दिन है मे रस खान वात फेलि जेहे सजनी कहा जो चन्द्र हाथन दुराडयो ॥ कालहु कार्लिन्दी तीर चितयो अचानकही दोऊन को दोऊ मुरि नृदु मुसकावो । दोऊ परें पैया दोऊ लेत है वलैया उन्हे भूलि गई गया इन्ट गागर उठावो ॥

तिय पिय के पिय तीय के, नय शिख साजि सिंगार ।

वरि बढतो तन मनहु को, दम्पति कस्त बिहार ॥

मिय मुरय शशि में नयन चकोर ।

एक बार चुनि कुसुम मुहाये, निज कर भूषण गम बनाये ।

वियोग (विप्रलम्भ) शृंगार ।

जहँ विछुरत तिय पीय सों, है वियोग शृंगार ।

हरि के विछुरे राधिका, तज सकल शृंगार ॥ यथा—

शुभ जीतल मठ सुगंध समीर कछु छल द्वन्द से द्ये गये है ।
पदमाकर चाँदनी चदह के कछु ओरहि डोरन न्वे गये है ।
मन मोहन सो विछुरे इतही वनि के न अवै दिन है गये है ।
सखि वे हम वे तुम वेई बने पै कछु के कछु मन है गये है ॥
पेसी न देखी सुनी मजनी श्रनी वाढत जान वियोग की वाधा ।
त्यो पदमाकर मोहन को नथ तं फल है न कह पल आधा ॥
लाल गुलाल घला घल मे द्य ठोरु दे गई रूप अगाधा ।
कै गई कै गई चेटकसी मन ले गई लै गई ले गई राधा ॥

अटक रहे कित ? कामरत, नागर नन्दकिशोर ।

करहु कहा पीकन लगे, पिक पापी चहुँ ओर ॥

त्रिविध वियोग ।

त्रिविध वियोग शृंगार वह, इक पूरव अनुराग ।

वरणत मान भवास पुनि, निरखि नेह की लाग ॥

पूर्वानुराग ।

हो आतुरता मिलन की, सो पूरव अनुराग ।

मनमोहन मिलिहैं जवहिं, अलि तवहीं बड भाग ॥

मोहि तजि मोहनै मित्यो है मन मेरो दौरि नैनह मिले है देखि देखि
वरो शरीर । कहै पदमाकर त्यो मानमथ कान भये हों तो रही जकि
के भूली सी भ्रमी सी वीर ॥ ये तो निरदर्द दई इनको दया न दई पेसी
॥ भई मेरी कैसो वरो तन धीर । हो तो मनहू के मन नैनन के नैन
पै कानन के कान तोपै जान तो पराई पीर ॥

जैसी छवि श्याम की पगी है तेरी आखिन में पेसी छवि तेरी
आम आखिन पगी रहै । कहै पदमाकर ज्यो तान में पगी है त्योही तेरी
नकानि कान्ह प्राण में पगी रहै ॥ धीर वर धीर धर कीरति किशोर्ये

नई लगन हतै उतै बराबर जगो रहै । जैसी रट तोही लागी माधवै की
राधे पसी राधे राधे राधे रट माधवै लागी रहै ॥

ज्यो ज्यो बरमन घोर प्रन, प्रन धमराड गरुवाइ ।
त्यो त्यो परति प्रचरए अति, नई लगन की जाइ ॥

तु० रा०—सुमिरि मीय नागद घचन, उपजी प्रीति पुनीत ।
गोतम तिय गति सुरति करि, नहि परसति पद पानि ।
मन विहँसे रघुबशमणि, प्रीति अलौकिक जानि ॥

(१) श्रवण दर्शन ।

दर्शन श्रवण जु सुनत नुति, उपजै चित अनुराग ।

अलि अस हरि सौं मिलत जे, तिन तिय के बड़ भागी ॥

रात्रिकासा ऋदि प्राई जु तू सखि सोवरे की मृदु मूरति जैसी ।
ताद्रिन ते पदमाकर तादि सुहात कछु न विसूरति वैसी ॥
मानहु नीर भरी घन की घटा श्रोखिन म रही आनि उनैसी ।
पैसी भई सुनि कान्ह कथा जु मिलोऋहिणी तब होशगी कैसी ॥

(२) चित्र दर्शन ।

दर्शन चित्र जु चित्र लखि, मन में होत निहाळ ।

चित्र देखि जकि थकि रही, सन्मुख कौन हवाल ॥ यथा—

चित्र के मडिर ते इक सुन्दरि ज्यो निकसे जिन्ह नेह नमा है ।
त्यो पदमाकर खोलि रही दग बोले न बोल अडोल दमा है ॥
भृगी प्रसंगते भृगहि हात जुपै जग में जड कीट महा है ।
मोहन मीत को चित्र लखे भई चित्रहिसी तो प्रिचित्र कहा है ॥

हरपि उठी फिर फिर परति, फिर परसति चरन लाय ।

मित्र चित्र पट को तिया, उर सो जेत लगाय ॥

(३) स्वप्न दर्शन ।

दर्शन स्वप्न जु स्वप्न में, लखि उपनति है प्रीति ।

सोवतहु हरि जात मन, यह कैसी अलि रीति ॥ यथा—

सुन्दरि स्वप्ने में लख्यो, निशि में नदकिजोर ।

(४) प्रत्यक्ष दर्शन ।

सो दरशन प्रत्यक्ष जय, लखिके उपजति प्रीति ।

पाय दरश नंद नन्द को, हिय हुलसी रस रीति ॥ यथा-

आई भलेहो चली संखियोंन में पाई गोविंद के रूप की भाकी ।

न्यो पदमाकर हार शियो गृह काज कहा अरु लाज कहा की ॥

है नखतें सिख लौ मृगु माधुरि बांकी ये भोहैं बिलोकनि बाकी ।

आजु की या छवि देखि भद्र प्रव देखिवे को न रह्यो कछु बाकी ॥

हौ लखि आई लखहुंगी, लखैं न क्यों ब्रज लोंग ।

निस्निदिन सांचहुँ सावरो, दुगुन देखिवे जांग ॥

मान ।

लखि पिय को अपगाध कछु, प्रिया ठानती मान ।

पिय दग लाली लखि तिया, तानति भौह कमान ॥

इसके तीन भेद हैं लघुमान, जो प्रिय वचनही से शांत हो मध्यममान, जो विनय व शपथादि से शांत हो और गुरुमान जो स्तुति भूषण प्रदान द्वारा बड़ी कठिनाई से निवृत्त हो ।

लघुमान

वाही के रंगी है रंग वाही के पगी है मग वाही के, लगी है मग ध्यानंद अगाधा को । कहै पदमाकर न चाहै तजैं नेकु दग तारन तें न्यारो कियो एक पल आधा को ॥ ताहूपै गोपाल कछु पेसां ख्वाल खेलत है मान मोरिवे को देखिवेकी कर साधा को । काहू पै चलाय चख प्रथम खिभावैं फेरि बांसुरी बजाइके रिभाइ लेत राधा को ॥

मध्यममान

वेमही की धोगी पै न भोरी है किंसोरी यह याकी चित चाह राह और की मँभैयो जिन । कहै पदमाकर सुजान रसखान आगे आन बान आनकी सुआन के लग्यो जिन ॥ जैसे अरु जैसे साधि मोहनि मनाइ लाई तुम इक मेरी बात पती बिसर्यो जिन । आजु की घरी तें जैसे मूलिह भले हो श्याम ललिता को लेके नाम बासुरी बज्यो जिन ॥

गुरुमान

नीली के अनैसी पुनि जैसी होइ तेसी तऊ यावन की मूर्तें न दुरि भागियहुँ है । कहै पदमाकर उजागर गोविंद जोपै चूकियो कहू तो इतो

रागियतु है ॥ प्रेमरस हाथ लै जगाये लै हिये सो हित पाइलै
 हरि चहु प्रेम पागियतु है । परी मृगनैनी तेरी पाइ लागि वेनी पाइ पाइ
 मे तेरे फेर पाइ लागियतु है ॥

निरखि नेह नीको बनो, या कहि नदकुमार ।
 सुभुज मेलि मेल्यां गरं, गज भोगिन को हार ॥

प्रवास ।

(भूत)

सो प्रवाम दुख भोगनीं, जिनके पिया विदेस ।
 कहा कीजिये हे अनी, हरि पठयो न सँदेस ॥

(भविष्य)

समाचार तिहि समय सुनि, सीय उदी अफुलाय ।
 जाय सासु पग कमटा जुग, बदि बैठि गिर नाय ॥

विरह की दशा ।

अभिलाषा चिंता बहुनि, सुमिरण गुण को गान ।
 पुनि उद्वेग प्रलाप गनि, अह उन्माद वखान ॥
 व्याधि और जडता मरण, विरह दसा दस आहिं ।
 कोउ कोउ मूर्खाहू कहत, सो संचारा माहिं ॥

विरह की दस दशाएँ हैं १ अभिलाषा, २ चिंता, ३ स्मरण,
 गुणरुचन, ४ उद्वेग, ५ प्रलाप, ६ उन्माद, ७ व्याधि, ८ जडता,
 ९ मरण । कोईर मूर्खा भी मानते हैं, इनमें से चिंता, स्मरण, उन्माद,
 व्याधि, जडता, मूर्खा और मरण की व्याख्या मन्वारी में वर्णित है तथापि
 मगानुसार यहा भी उनका सक्षिप्त चरण करते हैं—

(१) अभिलाषा

जहा परस्पर मिलन की, अभिलाषा मन माहिं ।
 मनमोहन के दरस को, ये नैना ललचाहिं ॥

पेसी मति होति अतः पेसी करोआली इतमाली के हियार को

जहाज तजि डारवाँड करिये ॥ घरी घरी पल पल छिन छिन रैन दिन
नैनन की आगती उतारवाँड करिये । इदुतें अप्रिक अरविद त अधिक
पेसो आनन गोविंद को निहारवाँड करिये ॥ -

(२) चिंता

चिंता कौनेहु भाति की, जब चित जाय समाय ।

है है कैसे विपिन में, सीय सहित टोड भाय ॥

ये विधि जो विरहागि के वान सो मागत हो तौ यहै वर मागो ।
जो पशु होउ तऊ मरि कैसहु पावरि है प्रभु क पग लागो ॥
दास पपेरुन मे करो मार जु नन्द किशोर प्रभा अनुरागो ।
भूपन कीजिय तौ वन मालहि जातें गोपालहि के हिय लागो ॥
कवहु नयन मम शीतल ताता । होइहि निरखि श्याम मृदु गाता ॥

(३) स्मरण 'स्मृति)

जहँ वियोग में पीव को, सुमिरन हो मन पाहिँ ।

मुरलीधर विमरत नहीं, लखि बंसीवट छाहिँ ॥ यथा—

यो दुख दे ब्रजवासिन को, ब्रज को तजि कै मथुरा सुख पैहँ ।
वे रस केजि विलासनि को, वन कुजन की बतिया विसगैहँ ॥
जोग सिखावन को हम को, बहुन्यां तुम मे उठि धावन पैहँ ।
ऊधो नहीं हम जानतती, मन मोहन कृवरि हांथ थिकैहँ ॥

सघन कुज झया सुखद, सीतल मद ममीर ।

मन हवै जात अजो वहै, वा जमुना के तीर ॥

तात शक्रसुत कथा सुनायहु । वाण प्रताप प्रभुहिँ समभायहु ॥

(४) गुण कथन

जहां विरह में कीजिये, पिय गुण गणनि बखान ।

मनपोहन के गुणनि पर, वारिय तन मन प्रान ॥

खंजन हैं मन रजन केराव रजन नैन किधौ मनि जीकी ।

मोठी सुधा की सुधाधर की दुति बतन को किधौ दाड़िमहीकी ॥

चद भलो मुखचद किधौ सवि सृगति काम की कान्ह की नोकी ।

कोमल पकज के पद पकज प्रान पियारे को मूरति पीकी ॥

(५) उद्देग

उद्देगहि में विरह तें, चित्त बहुत अकुलाय ।
मो तजि कुंवरी साथ क्यों, नेह लगायो जाय ॥

इन होत हरीरी मही को लये इन जोवति है कून जोति छटा ।
अचलोकति इद्र बध्न की पत्यारी विलोकति है खिन कारी घटा ॥
तकि डार कदवन की तरसै तरु देखत नाचत मोर अटा ।
अत्र ऊरथ आवत जात मया चित नागरि को नट कैसेो यटा ॥

(६) प्रलाप

है प्रलाप अटपट बचन, विरह दशा के बीच ।
कहा करत यह विरह जो, होत मुठी में भीच ॥

आम को कहत आमिली है आमिली को आम आरुही अनारन
आकियो करति है । कहे पदमाकर तमालन को नाग कहै तालनि
ल कहि ताकिया करति है ॥ कान्हे कान्ह काहू रुहि कदली कदवनि
भट परि रभन मे झाकियो करति है । सावरे सो रात्रे यो विरह
तानी वाल बन बन वावगी लां ताकियो करति है ॥

ना यह नद को मटिर है वृषभानु को भोन जहां जरती हो ।
होही यहा तुमहां कपि देर लु कौन को घृष्ट के तरती हो ॥
भेटत मोहि भट्र केहि कारन कौन कीधो छुमिओ छुमती हो ।
पेसी भई हो कहां किहि कारन कान्ह रुहा है कहा वकती हो ॥

(७) उन्माद

व्यर्थ उचन, रोदन हँसी, सो उन्माद बखान ।
छिन रोवत छिन हँसि उठत, छिन अनमिल बतरान ॥

अरि के यह आज अकेली गई खरिके हरि के गुण रूप लुही ।
उन्हु अपनो पहिराय हरा मुम्भकाय के गाइ के गाय लुही ॥

(८) व्याधि

व्याधि विरह तें होत जब, तन में अति संताप ।
सुनत भागती की व्यथा, तुम्हें आइए ताप ॥

विरह संतापन तें तपनि हेरानो चित ऊवि ऊवि सामें लेति वेन
नीर भरि भरि । कर्पूर धूरन तें चदन के चूरन तें तामरस मुरनि
उपाय थार्की करि करि ॥ घेरि रहीं घर की नगर की डगर आई देखि
देखि भाखै सगै ब्राहि ब्राहि हरि हरि । अग अग सूके वेन मूके में वधु
के उर भभकि भभूके भैनजू के उठें वरि वरि ॥

(९) जड़ता

जहें वियोग दुख तें तियहि, सुधि न रहत कछु देह ।
चित्र लिखी सी ठगि रहीं, मनमोहन के नेह ॥

कौल से पानि कपोल धरे दग द्वार लौ नीर भरे हिय हारे ।
चित्र चरित्रमई सी भई गई लीन हूँ दीन टरे नहि टारे ॥
रावगी लागी 'ममारख' दीठि न जात कही हम जाति पुकारे ।
जागिहै जीहै तो जीहै सवै न तु पीहै हलाहल नद के द्वारे ॥

(१०) मरण

मरण विरह में सुजस हित, कविजन करत बखान ।
रामचन्द्र विछुरत तजे, नृप दशरथ ने प्रान ॥

संगवारी सुनो सब कानन दे, विरहागि के हो तो मरी सुख मे ।
करि चेटक चदन बदन रीति, निहारियो भावते के रख में ॥
सुधि लेहिगे 'सेवक' जातहि, मेरी पठाइ है वाचन को दुख मे ।
तजि आगि सुधा गुनि पीतम की, धरि दीजियो पाती मेरे मुख मे ॥

(११) मूर्छा

नहीं मूर्छा में रहत, सुख दुख को कछु भान ।
वाल विरह व्याकुल परी, तजाने चहत अब प्रान ॥

नायिका ।

रम्य नायिका देखि, उपजे भावे सिंगार रस ।
रीझि रहे हरि देखि, तिय तन छवि सुकुमारता ॥

भा०-जिस सुंदर स्त्री को देखतेही हृदय में शृंगार रस का आविर्भाव हो उस रूपधरी युवनीकोही नायिका कहते हैं । यथा—
नायिका के तन की छवि, और सुकुमारता देखकर हरि मोहित हो
गये । यथा—

सुतर सुग्ग नैन सोभित, अलग रंग अंग अंग फैलत तरंग
परिमल के । धारन के भार सुकुमार की लचत लेकर राजै परजक पर
भीतर महल के ॥ कहै पदमाकर विलांकि जन रीझै जाहि अवर अमल
के सकल जल धल के । कामल कमल के गुलावन के, दल के सुजात
गडि पायन धिड़ौना मखमल के ॥

सवैया-जाहिरै जागतसी जमुना जब बूड़े वड़े उमड़े वह बेनी ।
त्यौं पदमाकर हीर के हारन गग तरगन को मुख देनी ॥
पायन के रँग सां रँगि जातिसी भातिही भाति सरस्वति सेनी ।
पैरे लहाई जहा वह बाल तहा तहा ताल में होत त्रिवेनी ॥
जासु की दीपति दीपतें सौगुनी दामिनी कुन्दन केसरि आइका ।
काम की खानि सदा मृदु वानि सनेह छकी छितिमें छवि छाइका ॥
अंग अनूपम को बरनै सब अंगन प्रीतम को सुखदाइका ।
मानो रची छवि मूरति मोहनी श्रीधर पेसी बखानत नाइका ॥
सहज सहेलिन सों जु तिय, विहंसि विहंसि बतरात ।
सरद चद की चादनी, मद परत सी जात ॥

वर्णानुसार नायिका भेद ।

दिव्य अदिव्य कहैं सुकवि, दिव्यादिव्य विचारि ।
त्रिप्रिध नायिका जगत में, ग्रन्थन बद्ध निहारि ॥
दिव्य देवतिय वर्णिये, नारि अदिव्य बखान ।

भा०-वर्णानुसार नायिका तीन प्रकार की हैं १ दिव्य, २ अदिव्य और ३ विद्याऽदिव्य ।

दिव्य-देवतिय, अदिव्य-नरतिय (सामारिक), विद्याऽदिव्य-ससार मे जन्मी हुई देवतिय, यथा—सीता, पावती, राधिकादि ।

जात्यनुसार नायिका भेद ।

पद्मिनि चित्रिनि शखिनी, अरु हस्तिनी वखानि ।

विविध नायिका भेद में, चारि जाति तिय जानि ॥

भा०-जात्यनुसार इनके चार भेद हैं अर्थात् पद्मिनी, चित्रिनी, शखिनी और हस्तिनी, इनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

पद्मिनी-अल्प रोष रति सुन्दरी, पद्मिनि, तन सुकुमार ।

तिय के बस में पिय भये, करि राख्यो हिय हारा ॥ यथा—

सोनो और सुगन्ध है, बाल सलोने गात ।

जायें पिय चख भोरलो, सदा रहत मँडरात ॥

चित्रिनी-वृत्त्यगान, पिय चित्र रुचि, जाकहँ चित्रिनि सोय ।

पिया, चित्र लखि तिय रही, चन्द्र चकोरी होय ॥ यथा—

मित्र नाहिँ चितवते कहीं, चित्र रहो चितलाइ ।

पत्री हेरति है काँऊ, पत्री, सन्मुख पाइ ॥

संखिनी-कृश तन लघु कुच निलज ल्यों, संखिनि रहत सरोप ।

नैन तनैन कर तिया, बोली-लखि पिय दोष ॥ यथा—

सनख हियो लखि लाल को, यह मन होत, संदेह ।

नखन खाँदि चाहत कियो, लालन के हिय गेह ॥

हस्तिनी-देह लोम युत शूल बद्ध, हस्तिनि की गज चाल ।

तिय, सन्मुख पिय रहत ज्यों, पन्यो पीजर लाल ॥

अन्य भेद ।

इन नायिकाओं के प्रकृति के अनुसार तीन भेद हैं १ उत्तमा, २ मध्यमा और ३ अधमा तथा स्वभावानुसार भी तीन भेद हैं १ अन्य-

सुरतदु.खिता, ० मानवती और ३ वक्रोक्तिगर्विता और वर्मानुसार भी तीन भेद हैं—१ स्वकीया, २ परकीया और ३ सामान्या (गणिका) स्वकीया के भी अवस्था अर्थात् वयानुसार तीन भेद हैं १ मुग्धा, २ मध्या और ३ प्रौढा तथा दशा के अनुसार मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया और सामान्या इन प्रत्येक के दस दस भेद हैं—

१ प्रोपितपतिका, २ खडिता, ३ कलहातरिता, ४ विप्रलब्धा, ५ उत्कठिता, ६ वामकसजा, ७ स्वाधीनपतिका, ८ अभिसांगिका, ९ प्रत्यस्तपतिका और १० आगतपतिका । इन समस्त भेदों का क्रमानुसार वर्णन किया जाता है—

उत्तमा

स्वापय दोष लखि उत्तमा, धरै न मन में रोष ।

सुखी रहौ कितहुं रहौ, पिया हमें सन्तोष ॥ यथा

भा०—निज पति के दोष देख और मुनकर भी जो नायिका मन में रोष (क्रोध) न लावे अर्थात् पिय के अहित करने पर भी सदा हित करनेवाली स्त्री को उत्तमा कहते हैं । जैसे—हे प्यारे आप जहा रहो तहा सुख में रहो, आपके सुखी रहनेही में हमें परम सतोष है ।

जो मथुरा हरि जाय बसे हमरे जिय प्रीति बनी रहि, सोऊ ।
ऊधा बडो सुख पहि हमे अति नीकी रहै बग मूरति दोऊ ॥
मेरेही नाम की छाप पडी अरु अन्तर बीच कहै नहि कोऊ ।
राधिका कृष्ण मंत्र तो कहै पर कृवरी कृष्ण कहै नहि कोऊ ॥

मध्यमा

पिया दोष लखि मध्यमा, करै मान सन्मान ।

सन्मुख लखि नन्द नन्द कहूँ, बगजि मंद मुसकान ॥

भा०—पिय के गुनाह (दोष) देखकर मान सन्मान (हिताहित) करनेवाली स्त्री को मध्यमा कहते हैं । यथा—नन्द नन्दन का नामने देखकर प्राने में बना किया और तत्पश्चात् मंद मंद मुसकराने लगी ।

अधमा

पिय ज्यों ज्यों कर नेह, अधमा त्यों त्यों रिस करै ।
तीय करति तउ तेह, पीय परत पायन जऊ ॥

भा०—ज्योंही ज्यों पिय (स्नेहपूर्वक) हित करता है, त्योंही त्यों अधिक रोय (कोध) अर्थात् अहित करनेवाली स्त्री को अधमा कहते हैं । दुष्टा आर कर्कशाभी इसी को कहते हैं । यथा—पिय ज्यों२ पांय पडता है तिय त्यों२ अधिकाधिक कृपित होती है ।

हैं उरभाह गिभाहये को रस रान कविसन की धुनि छाई ।
त्यों पदमाकर नाहस के कयहूँ न विपाद की वात सुनाई ॥
स्वप्रहू में न कियो अपराध सुआपने हाथन सेज विझाई ।
प्यो परि पाह मनाह जऊ तऊ पापिन को कछु पीर न आई ॥

अन्य सुरत दुःखिता

अन्य सुरत दुखिता दुखित, लखि तिय तन रति अंक ।
मो हित तन बहु उत सहे, नाहिन तोहि रुलंक ।

अन्य स्त्री के तन पर निज प्रीतम के रति बिन्दु देखकर स्त्री अपना दुःख प्रगट करे उसे अन्य सुरत दुःखिता वा अन्य सम्भोग दुःखिता कहते हैं । यद्यपि यह लक्षण प्रौढ़ा में भी सम्भव है तथापि कविजन इसका कथन बहुधा परकीया में करते हैं । यथा—हे सखी तूने मेरे लिये तन में बहुत घाव सहे हैं सो तूझ को कोई कलक नहीं है अभिप्राय यह है कि तू महा कलंकिनी है । यथा—

बोलति न काहे परी पूछे विन बोलों कहा, पूछति हों कहा भई
स्वेद अधिकाई है । कहैं पदमाकर सुमारय के गये आये साची कह मोसों
आज कहा गई आई है ॥ गई आई हों तो पास सावरे के, कौन काज ?
तेरे लिये ल्यावन सु तेरिये दुहाई है । काहे त न लाई फिरि मोहन
विहारी जू को, कैसे वाहि ल्याऊ ? जैसे वाको मन ल्याई है ॥

दूती पर/उपकारणी, को जग में सम तोर ।

अति सुकुमार शरीर में, सहे जु छत हित मोर ॥

मानवती ।

पिय सों करै जु मान तिय, वहै माननी जान ।

पांव परत हू पीय तिय, तानति भौह कमान ॥

भा०-पिय के अपराध सूचनार्थ पिय प्रति मान करनेवाली स्त्री मानवती कहते हैं । यथा—प्रीतम के पांव पडने पर भी नायिका इह कमान तानती है ।

त्यार तजै भ्रांरहु तजै, भूपन भ्रमल भ्रमोल ।

तजन कषां न सुहाग में, भ्रजन तिलक तमोज ॥

वक्रोक्तिगर्विता ।

वह वक्रोक्ति गर्विता, त्रिविध कहत रसधाम ।

प्रेम रूप गुण गर्विता, क्रम तें इनके नाम ॥

भा०-प्रिय के प्रेम का वा निज स्वरूप का जो स्त्री अभिमान (वद) करे उसे वक्रोक्तिगर्विता कहते हैं । इसके दो भेद हैं १ प्रेमगर्विता रूपगर्विता । किसी ने एक तीसरा भेद गुणगर्विता भी कहा है ।

प्रेमगर्विता ।

करे प्रेम को गर्व जो, प्रेमगर्विता मान ।

दुख इतनो सखि मम पिया, देत न मइके जान ॥

भा०-पिय के प्रेम का जो स्त्री गर्व करे वही प्रेमगर्विता है । यथा—सखी मुझ को दुख केवल इतना है कि मेरे पिया मुझ को मइके नहीं जाने देते । पुनर्यथा—

मो विन माह न खाइ कछू पदमाकर त्यों भई भाभी अचेत है ।

बीरन आये जियायवे को तिनकी मृदु वानिह मानिन लेत है ॥

प्रीतम का समुझावत क्यों नहि हे सखि तू जुपे राखति हेत है ।

और तो मोहि सवै सुखरी दुखरी यह माइके जान न देत है ॥

रूपगर्विता ।

रूप गर्विता होत वह, रूप गर्व को धारि ।

मो मुख चदा सम कहत, अजब इहा की नारि ॥

भा०-निज स्वरूप का गर्व करनेवाली स्त्री रूपगर्विता कहलाती है । यथा—मैं ही नारि का मुख चदा सम कहती हूँ । नारि के मुख को मैं ही देखती हूँ ।

गुणगर्विता ।

ताहि कहत गुणगर्विता, होहि गर्व गुण जाहि ।
मो गूथो गजरा सखी, पहिरत पिया सराहि ॥

भा०—जिस नायिका को अपने गुण का गर्व हो, उसे गुणगर्विता कहते हैं । यथा—हे सखी मेरे प्रीतम प्यारे मेरी गुद्दी हुई फूलों की माला की सराहना करके धारण करते हैं ।

स्वकीया ।

धन्य स्वकीया नायिका, निज पति ही मों प्रेम ।
पति परमेश्वर मानि के, तिय सेवति मंड नेम ॥

भा०—जो स्त्री मन बच काय (अर्थात् मनसा, बाचा, कर्मणा) से अपने ही पति के प्रेम में लीन हो और स्वभावही से लज्जा तथा शीलवती हो उसे स्वकीया वा स्वीया-नायिका कहते हैं । यथा—नायिका अपने पति को परमेश्वर ही मानकर नियमपूर्वक उसकी सेवा करती है । इसके अवस्थानुसार मुग्धा, मध्या, प्रौढा तीन भेद हैं जो क्रमशः आगे लिखेंगे ।

शोभित स्वकीयागनगुण गिनती में तहां तेरे नामही की एक रेखा रेखियतु है । कहै पदमाकर पगी यो पति प्रेमही में पदुमिनि तोसी तिया तूही पेखियतु है ॥ सुवर्न रूप जैसे तैसो सील सोरभ है, याही तें तिहारो तन धन्य लेखियतु है । सोने में सुगन्ध न सुगन्ध में सुन्योरी सोनो, सोनो औ सुगन्ध तोमे दोनो देखियतु है ॥

तो हित सुन्दर देवन की तमवीर लिखी मणि मन्दिर मारि ।
कौतुक हेत सहैत सयै सो करी निज पीतम तो चित चाहि ॥
जानि परी न कछु हमको मनि पाई भट्ट तें कहा किहि पाही ।
देखी अनाखी नई नवला यह काहे तें चित्र धिलोकत नाही ॥ यथा—

पति देवता सु तीय महँ, मानु प्रथम तव रेख ।

खान पान पीछु करति, सोवति पिढले छोर ।

पान पियारे तें प्रथम, जगत भावती भोर ॥

प्रीतम के प्रेमानुसार स्वकीया के दो भेद हैं १ जेष्ठा, २ कनिष्ठा ।

वरणत जेष्ठ कनिष्ठका, जहँ व्याही तिय दौय ।

पिय प्यारी जेठा कही, अनप्यारी लघु सोय ॥

भा०—जहा दो स्त्रिया विवाहित हों, उनमें से जो पिय की विशेष प्यारी हो वही जेष्टा अर्थात् “जिसे पिया चाहे वही सुहागिन” और अनप्यारी को कनिष्ठा कहते हैं । जहा अधिक स्त्रिया विवाहित हो उनमें भी सब से अधिक प्यार वाली जेष्टा और जेप कनिष्ठा जानना चाहिये । यथा—

जल विहारि पिय प्यारि को, देखति क्यों न सहेलि ।

लै डुवकी तजि एक तिय, करत एक सो केलि ॥

अवस्था अर्थात् वयकमानुसार स्वकीया के तीन भेद हैं १

० मध्या, ३ प्रौढा ।

एक स्वकीया की कही, कविन अवस्था तीन ।

मुग्धा एक मध्या बहुरि, पुनि प्रौढा परवीन ॥

मुग्धा के अंग अंग, झलकत आवे तरुणई ।

तन अनग रस रंग, नित नृतन प्रगटन लगे ॥

भा०—जिसके शरीर के अंग प्रत्यग में नवयोवनाकुण निकलते भावें उसे मुग्धा कहते हैं इसे काम चेष्टा नहीं रहती । यथा—नायिका के तन में नित नवीन अनग रसरंग प्रगट होने लगे हैं । यथा—

कहु गज गति के आहटनि, छिन छिन छीजत मेर ।

धिधु विकाम विकसत कमल, कहु दिनन के फेर ॥

पल पल पर पलटन लगे, जाके अंग अनूप ।

पेसी एक ध्रज धाल को, को कहि सकत सरूप ॥

यह अनुमानि प्रमाणियत, तिय तन जावन जेति ।

ज्यो भेहदी के पात में, अजगव ललाई होति ॥

मुग्धा के दो भेद हैं ।

मुग्धा द्विविधि रखानई, प्रथम कही अज्ञात ।

ज्ञात याचना दूसरी, भापत मति अवदात ॥

अज्ञात यौवना ।

सो अजान जोवन तिया, जोवन जिहिं न जनाय ।
ढीलि परति क्यों घांघरी, आङ्गी तन न समाय ॥

भा०—जिसे अपना यौवनागमन न जान पड़े उसे अज्ञात यौवना कहते हैं । यथा—हे सखी दिन दिन घांघरी क्यों ढीली पड़ती जाती है और अगिया क्यों कडी होने लगी ?

लाल तिहारें संग में, खेलो खेल बलाय ।
मूर्धत मेरे नैन हो, कगन कपूर लगाय ॥

ज्ञात यौवना ।

ज्ञात यौवना जानडी, यौवन आगम अङ्ग ।
दिना द्वैकतें बाल क्यों, लखन लगी निज अङ्ग ॥

भा०—जिसे यौवन का आगमन स्वयं जान पड़े सो ज्ञात यौवना है । यथा—नायिका दो एक दिन से अपने अंग को बार बार क्यों देखने लगी है ?

ये क्षुभान किशोरी भई इत हां वह नन्द किशोर कहावै ।
त्यौं पदमाकर दोउन पै नवरग तरंग अनग की द्वावै ॥
दोरें दुह दुरि देखिये को वृति देह दुहकी दुहन को भावै ।
हां इनके रस भीने बडे दग हा उनके मसि भोजित आवै ॥
इतै उते सकुचत चितै, चलत डुलावति बांह ।
दीठ बचाय सखीन की, किनक निहारति द्वांह ॥

ज्ञात यौवना के दो भेद हैं १ नवोढा, २ विश्रग्ध नवोढा ।

नवोढा ।

नहिं नवोढा रति चहै, अति लज्जा भय पाय ।
निरखतही सखि सिर मुकुट, लगी धाय गरजाय ॥

भा०—अधिक भय तथा अधिक लाजवश जो नायिका रति न चाहे उस मुग्धा को नवोढा कहते हैं । यथा—सखी के सिर पर मुकुट देखतेही हरि समझकर नायिका धाय के गलेमें जाकर लिपट गई । यथा—

राजि रही उलही कृषि सो दुलही दुरि बेखतही फुलवारी ।
 त्यो पदमाकर बोलै हँसै हुलसै पिलसै मुग्धचन्द उज्यारी ॥
 पेमे समै कहु चातक की धुनि कान परी उरपी वह प्यारी ।
 चौकि चली चमकी चितमे चुप है रही चचल अचलवारी ॥

विश्रब्ध नवोदा ।

सो विश्रब्ध नवोद जिहि, हो कछु रति परतीत ।
 दूर गये पिय लालसा, निकट भये भय ग्रीति ॥

भा०—थोड़ामी विश्राम तथा अनुराग पति पर होनेवाली मुग्धा को विश्रब्ध नवोदा कहते हैं । यथा—प्रीतम के दूर होने पर तो नायिका के मन में निकट जाने की लालसा बलवती होती है पर समीप जाने पर भयभीत होती है ।

मध्या ।

म-या तन में राजहीं, लज्जा मदन समान ।
 कहन चाहति कहि नहिँ सकति, लगति सखी के कान ॥

भा०—लज्जा और मदन जिस स्त्री में समान होता है उसे मध्या कहते हैं । यथा—नायिका कुछ कहना चाहती है परन्तु सखी के कान में लगतेही कुछ नहीं कह सकती । पुनर्यथा—

देखे वनै न देखवों, अनदेखे अफुलाहि ।
 इन दुखिया अखियान को, सुख सिख्योही नहिँ ॥
 मदन लाज बस तिय नयन, देगत बनन-इकत ।
 ईचे खिचे इत उत फिरत, जिमि दुनारि के फत ॥

मान के समय मध्या के तीन भेद ।

मान समय मध्याहि के, तीन भेद पुनि जान ।
 धीरा और अधीर गनि, धीराऽधीरा मान ॥

भा०—मान के समय में मध्या तीन प्रकार की होती है १ धीरा, २ अधीर और ३ धीराऽधीरा ।

मध्याधीरा ।

मध्याधीरा व्यंग्य रिस, तजै न पति सनमान ।

स्वारथ परमारथ करत, हौं पिय नीति निधान ॥

भा०—अन्य रतिसूचक चिन्ह देख धैर्य तथा मानपूर्वक सारर व्यंग्य वचनों से क्रोध जनानेवाली स्त्री को मध्याधीरा कहते हैं । यथा—हे पिय तुम यद्यार्थ में नीतिनिधान हो क्योंकि स्वार्थ परमार्थ दोनों साधते हो ।

स्वारथ में रत हैं सबही परमारथ साधत नाहिं न कोऊ ।

हैं परमारथ में रत लोग गुलाय कहै किरलै जस जोऊ ॥

जो परमारथ स्वारथ हीन लु आलस लोभित कीरति खोऊ ।

हौं तुम नीति निधान लजा परमारथ स्वारथ साधत टोऊ ॥

भाल पै लाल गुलाज गुलाल सो गेरि गरे गजरा अल धेलौ ।

यो बनि बानिक सो पदमाकर आये जु खलन फारा तो खेलौ ॥

पै इक या छवि देखिबे के लिये मो बिनती के न भोरिन मेलौ ।

राधरे रग रंगी देखियान मै ए दलधीर अवीर न मेलौ ॥

मध्या अधीरा ।

मव्य अधीरा रोस करि, करति अनादर कंत ।

जाव पिया जहँ निधि जगे, कस भूले ही अत ॥

भा०—अन्य रति सूचक चिन्ह देखकर अधीरता सहित प्रत्यक्ष कोप तथा प्रीतम का अनादर करने वाली स्त्री को मध्याधीरा (मध्या अधीरा) कहते हैं । यथा—हे पिया वही जाचो जहा रात भर जगे हो । यहाँ दूसरी जगह कहाँ भूल पड़े हो ।

भूले से भ्रमे मे काहे सोचत भ्रमे से अकुलाने से विकाने मे डगे से ठीक ठाये हो । कहै पदमाकर सुगोरे रग वारे दग, थारे थारे अजब कुसुम्भी करि लाये हो ॥ आगे को धरत पर पीछे को परत पग, भोरही ते आज कछु ओरै द्रवि द्याये हो । कहा आये ? तेरे धाम कौन काम ? घर जानि तहाँ जाउ कहाँ ? जहा मन धरि आये हो ॥

मध्या धीराधीरा ।

मध्या धीरा धीर मृदु, भापि रोय सह रोप ।

भाग लिख्यो हम भोगती, पिया तुम्ह नहिं दोषा ॥

भा०—अन्य रति सूचक चिन्ह देख गुप्त तथा प्रमत्त (अर्थात् उभयतः) रोदन सहित रोप प्रकाश करनेवाली मृदुभाषिणी स्त्री को

मध्या धीरा अधीरा कहते हैं । यथा—हे पिया तुम्हारा कुछ दोष नहीं हम अपने नाग्य का लिखा हुआ दुःख भोग रही हैं । पुनर्यथा—

—ए बलि कहाँ हो फिन का कहत वस्तु अरी रोम मज रोस कियों में का अचाहे को । कहै पवमाकर यहँ तो दुख दुरि करौ दोस कछु है तुम्हें नेह निरवाहे को ॥ तौपै इत रोवति कहाँ हौ कहीं कौन था मेरेहुँ जु आगे किये आंसुन उमाहे को । फोहो मैं तिहारी ? तू तो मे प्राणप्यारी अजू होती औ पियारी तब रोती कहो फाहे को ॥

आजु कहा नजि बैठी हौ ? भूयण, ऐनेहि अग अछू अरसीले । बोलति बोल ग्यारह जिये मति राम स्नेह सुनेतँ सुसीले ॥ क्यों न कहौ दुख प्राण प्रिया ? असुवानि गेह भरि नैन लज्जिले । कौन तिन्हें दुख है, जिगहे, तुम से मन भावन छेज छडीले ॥

कहि आदर तिय पीय को, देखि दगन धलसानि ।
सुमुख भोर बरसा जगी, जै उगास अंसुवानि ॥

प्रौढ़ा ।

प्रौढ़ा लज्जा ललित कलु, सकल केलि की खानि ।
तिय इरुन्त में कन्त रुहँ, अछू भरति मनयानि ॥

भा०—किंचित लान तथा मदन पूरित और सम्पूर्ण काम कजार् में प्रवीण स्त्री को प्रौढ़ा प्रगल्भा और समस्त रस कोविदा कहते हैं यथा—नायिका कन्त का एकान्त में पाकर इच्छापूर्वक अक में भरत है । पुनर्यथा—

तुम नाम लिवावति हौ हम पे हम नाम कलौ कह जीजियेजू ।
अब नाव चले सिगरे जल में थल में न चले कह कीजियेजू ॥
कवि मचितँ औसर जो अकती रकती गई ह्यपर कीजियेजू ।
हम तो अपनो वर पूजती ह सपनेहुँ न पीपर पूजियेजू ॥
तिय तन लाज मनोज की, यो अब दशा दिखाति ।
ज्यो हिमत अतु मे सदा, घटत बढ़त दिन राति ॥

प्रौढ़ा विभेद कथन ।

प्रौढ़ा द्विविधि बखानही, रति प्रीता इक वाम ।

सुचितै सुचित द्वै कै गनित निकारो तो ॥ ठाकुर कहत यह प्रेम की परिच्छा छान दृच्छा को प्रमान भलीभांति निरधारो तो । मेरो मन माहन तें लागत है बार बार मोहन को मोते मन लागि है विचारो तो ॥

गोप सुता कहै गोरि गुसाइनि, पांव परीं विनती सुनि लीजे ।
दीन दयानिधि दासी के ऊपर, नैसुरु चित्त दया रस भीजे ॥
देहि जौ व्याहि उछाह सों मोहनै, मात पिताह के सों मन कीजे ।
सुन्दर सांवरो नन्दकुमार, वसै उर जो वर सो वर दीजे ॥

सू०—ऊढा और अनूढा के दो दो भेद और माने गये हैं जो स्वेच्छा पूर्वक उपपत्ति से प्रेम करे उस परकीया को उदबुद्धा और जो उपपत्ति की चतुराई में लगकर प्रीति करे उस परकीया को उद्योषिता कहते हैं ।

परकीया विभेद ।

शुति परकीया के कहै, षट विध भेद खान ।
प्रथमहि गुप्ता जानिये, बहुरि विदग्धा मान ॥
ललित लक्षिता तीसरी, चौथी कुलगा होइ ।
पञ्चई मुदिता षष्ठई, है अनुशयना सोइ ॥

परकीया के छ भेद हैं अर्थात् १ गुप्ता, २ विदग्धा, ३ लक्षिता, ४ कुलगा, ५ मुदिता और ६ अनुशयना ।

गुप्ता ।

गुप्ता रति गोपन करै, त्रिविध कहत समुभाय ॥

भा०—पर पुरुषानुराग सम्बन्धी क्रिया को छिपाने वाली स्त्री को “गुप्ता” कहते हैं इसके तीन अवान्तर भेद हैं १ भूतसुरतसंगोपना, २ वर्तमानरति संगोपना, ३ भविष्यरति संगोपना ।

भूतसुरत संगोपना ।

भूतसुरत-संगोपना, प्रथम भेद यह आइ ।-

फटिगो चीर करीर फंसि, लगे कंट तन घाइ ॥

भा०—बीती हुई रति को छिपाने वाली नायिका भूत सुरति संगोपना कहती है । यथा—देखो सखी करल में उलझकर मेरे चीर फट गये हैं और शरीर में कांटों के घाव लग गये हैं । यथा—

छुटत कम्प नहि रैन दिन, विदित विदारनि काय ।
 अति शीतल हेमत की, अरी जरी यह वाय ॥

वर्तमान मुग्ध सगोपना ।

वर्तमान रति गोपना, भेद दूसरो जान ।

बहि जाती मैं सरित में, जा न गहत हरि आन ॥

भा०—वर्तमान रति छिपाने वाली नायिका को वर्तमान सुरति सगोपना कहते हैं । यथा—यदि हरि आकर मुझे न पकड़ते तो मैं निश्चय इस नदी में बह जाती । पुनर्यथा—

जोर जगो जमुना जल धार में धाय धसी जल केलि की माती ।

ल्यो पदमाकर पैग चलै उछलै जल तुग तरंग विधाती ॥

दूटे हग कुरा छूटे सबै सरवार भई अंगिया रंगराती ।

को कह तो यह मेरी दशा गहता न गुर्विद तो मैं बहि जाती ॥

चढत घाट बिचर्या सुपग, भरी आन इन अक ।

ताहि कहा तुम तकि रही, यामे कौन कलक ॥

भविष्य सुरति सगोपना ।

है भविष्य रति गोपना, लक्षण नाम प्रमान ।

'पुष्प लेन को जाय बन, शुरु चौथत अधरान ॥

भा०—भावी सुरति गोपन करने वाली नायिका को भविष्य सुरति गोपना कहते हैं । यथा—पुष्प लेने के लिये बन को कौन जाये वहा तो शुक मेरे अधरो मे द्रुत कर देता है अर्थात् अधर चौथ खाता है । पुनर्यथा—

झोऊ कछु अथ काहुवै, मत लगाइयो दोष ।

होन लगो ब्रज गलिन मे हुनि हारन को घोष ॥

विदग्धा वर्णन ।

द्विविध विदग्धा जानिये, वचन विदग्धा एक ।

क्रिया विदग्धा दूसरी, भनत सुकवि सविवेक ॥

भा०—पर पुरुषानुराग सम्बन्धी कार्य को चतुरार्धपूर्वक साधन

वचन विदग्धा ।

वचन विदग्धा साधती, वचन रचन सों काज ।

रैन अंधेरी सून घर, दर्द सहायक आज ॥

भा०—वचन चातुरी से परपुरुषानुराग सम्बन्धी कार्य को साधन करनेवाली नायिका को वचन विदग्धा कहते हैं । यथा—रात अंधेरी है और घर सूना है आज हमारा रामही रक्षक है । यथा—

कल करील की कुज मे, रह्यो अरुक्ति मो चीर ।

ये बलवीर अहीर के, हरत क्यो न यह पीर ॥

क्रिया विदग्धा ।

क्रिया विदग्धा साधती, चतुर क्रिया करि काज ।

केश मांग ल्वै सैन क्रिय, अर्ध निशा मिलु आज ॥

भा०—परपुरुषानुराग (प्रीति) सम्बन्धी कार्य क्रिया चातुरी द्वारा साधन करनेवाली नायिका को क्रिया विदग्धा कहते हैं । यथा—नायिका ने केश और मांग लूकर यह सकेत किया कि प्यारे आज आधीरात को मिलना । इसी को बोधक क्रिया भी कहते हैं ।

लक्षिता ।

निरखि लक्षिता आन रत, करै प्रगट तिय आन ।

कहा छिपावति री लग्यो, अजन हरि अधरान ॥

भा०—जिम नायिका का परपुरुष सम्बन्धी प्रेम कुछ चिन्हों से दूसरी स्त्री जानकर प्रगट कर देवे उस नायिका को लक्षिता कहते हैं । यथा०—अरी सखी हमसे क्या छिपाती है तेरी प्रीति प्रगट करने के लिये तो स्वयं हरि के अधरो मे अंजन लगा है ।

कुलटा ।

कुलटा कुल बोरनि करै, बहु लोगन सों प्रेम ।

फरै सरस जन दुमन तें, हे बिधि कर अस नेम ॥

भा०—जार (व्यभिचारी) पुरुषों के विलासादिक से भी असन्तुष्ट स्त्री को कुलटा कहते हैं (अर्थात् अनेक पुरुषों से रति चाहने

वाली स्त्री ही कुलटा है) यथा—हे विधवा पेसा नियम करिये, कि
 वृत्तो मे रसीले जन फरने लगेँ जिससे हमारी मनोकामना पूर्ण होवे ।
 पुनर्यथा—

जानि सुजान मे प्रीति करी सहिके वष्टु भातिन लोग हँसाई ।
 त्यो हरिघन्द्रजू जो जो कहाँ मो कन्यो चुप ह्वे करि कोटि उपाई ॥
 सोई नहीं निरही उनसों उन तोरत वार कछु न लगाई ।
 साची भई कहनाचतिया अरी ऊची दुकान की फीकी मिठाई ।

अनुशयाना ।

अनुशयनहिं संकेत के, विघटन तें सुख हानि ।
 वर्तमान भावी बहुरि, भूत तीन विधि जानि ॥

भा०—सकेत नष्ट होने के कारण दुःखित स्त्री को अनुशयाना
 कहते हैं इसके तीन भेद हैं । वर्तमान (सकेत विघटना) २ भावी (सकेत
 नष्ट) ३ भूत (रमण गमना)

प्रथम अनुशयाना सकेत विघटना ।

पाँहली अनुशयना दुःखित, लखत नष्ट सकैत ।
 ननदी लगत वसंत के भई दूबरि किहिं हेत ॥

भा०—वर्तमान सकेत स्थल को नष्ट होते हुए देखे दुःखित होने-
 वाली नायिका को प्रथम अनुशयाना कहते हैं । यथा वसंत के लगतेही
 ननंद न्यो दुखली पडती जाती है । यहा वसन्त में पतझट होकर सकेत
 स्थान नष्ट होना व्यजित होता है पुनर्यथा—

मौति सँजोग न रोग कछु, नहिं रियोग बलवन्त ।
 ननंद होत क्योँ दूबरी, लागत ललित वसन्त ॥

(२) अनुशयाना भावी संकेत नष्टा ।

दूजी अनुशयना विकल, भावि सहेट अभाव ।
 ससुरेहू बहु राटिका, दुलहिन जानि पठिताव ॥

सखी की उक्ति है दुलाहिन तुम किसी बात का शोच न करो तुम्हारे
ससुरे में भी बहुतसी फूलवारिया हैं ।

निघटन फूल गुलाब के, धरति क्यों न धनधीर ।
श्रमल कमल फूलन लगे, विमल सरोवर नीर ॥

(३) अनुशयाना रमण गमना ।

व्याकुल अनुशयना तृतीय, रमन गमन अनुमान ।

चौकि, चकी, उभकी, भकी, सुनि वंशी धुनि कान ॥

भा०—रति सकेत में प्रीतम का गमन अनुमानकर वहा न पहुँच सकने
के कारण व्याकुल (दुःखित) होनेवाली स्त्री को तीसरी अनुशयाना तथा
रमण गमना कहते हैं । यथा—वंशी की ध्वनि सुनकर नायिका चकित हो
चमक उठी और कपित होकर इधर उधर देखने लगी । यहा वंशी ध्वनि
से नायक का पहिले पहुँच जाना व्यजित हुआ ।

मुदिता ।

मुदिता मुदित जु होय प्रिय, बात बात सुनि देखि ।

कन्त गमन हरि आगमन, देखि प्रसन्न विशेखि ॥

भा०—स्नेहार्पक सानुकूल वार्ता वा समय देख सुनकर जो
स्त्री मुदित (प्रसन्न) हो उसे मुदिता कहने हैं । यथा—कन्त का अन्यत्र
जाते हुए और हरि को निज गृह आते हुए देखकर नायिका अत्यन्त
प्रसन्न हुई । यथा—

परखि प्रेम बस पर पुरुष, हरपि रही मति मैन ।
तव लागि झुकि आई बटा, अधिक अधेरी रेन ॥

सामान्या (गणिका)

सामान्या धन लोभते, करै जनन सों प्रेम ।

आज हार प्रिय देहु कल, लैयो विंदिया हेम ॥

भा०—केवल धनार्थही प्रेम करनेवाली स्त्री को गणिका कहते हैं
यथा—हे प्यारे आज तो यह हार दे दीजिये और कल सोने की विंदिया
लेते आना ।

तन सुवरन सुवरन वमन, सुवरन उरुति उडाह ।
धनि सुवरन में है रही, सुवरन ही की चाह ॥

सू०—परकीया और गणिका की प्रोढ़ अवस्था काही कविजन वर्णन करते हैं ।

नायिका के दश भेद ।

प्रापित पतिका, खडिता, कलहान्तरिता होइ ।
विमलब्ध उत्कठिता, वामरु सज्जा जोइ ॥
स्वाधिन पनिकाहू कहत, अभिसारिका बखानि ।
प्रगट प्रवत्स्यत् प्रेयसी, आगत पतिका जानि ॥

मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया और सामान्या में ये दसों भेद पद्यातर्गत भाषानुसार निश्चित कर लिये जाते हैं । यथा—मुग्धा, प्रापित पतिका, मध्या प्रापितपतिका, प्रौढा प्रापितपतिका, परकीया प्रापित पतिका, सामान्या प्रापितपतिका इत्यादि । “रसकुसुमाकर” में सामान्या में ये दस भेद नहीं कहे हैं परन्तु अन्य कवियों ने इनका वर्णन किया है ।

(१) प्रापितपतिका ।

प्रापितपतिका सोइ, पिय विदेश सों दुखित जो ।
निशिदिन काटत रोइ, पिय अथलौ बहुरे नहीं ॥

भा०—प्रीतम के विदेश गमन से विरह सतापित स्त्रीको प्रापित पतिका कहते हैं । यथा—पिय अब तक परदेश से नहीं आये ऐसा साच कर नायिका रातदिन रोया करती है । यथा—

निसिहिं ससिहि निडहि बहुभाती । जुग नम भई सिरात न राती ॥

(२) खडिता ।

दुखित खडिता पीय तन, लखि पर तिय रति अड्ड ।
को बड भागिनि पिय रंगी, लाली नैननि वड्ड ॥

भा०—अन्य स्त्री सम्भोग सूत्रक असाधारण चिन्ह सहित नायक के प्रभात आगमन से क्रोधित होनेवाली स्त्री को खडिता कहते हैं । यथा—प्रातः समय घर में नायक को आया हुआ देखकर नायिका कहती है हे प्रिय किस बड़भागिनी ने तुम्हारे वाके नेत्रों को लाल रंग में

(३) कलहांतरिता ।

कलहांतरिता कलह करि, पिय सौं पुनि पछिताय ।
रसन नयन अजगुत नहीं, कर हटक्यो पिय हाय ॥

भा०—प्रीतम का स्वयं अपमान कर पीछे से पश्चात्ताप (पङ्क्ताने) वाली स्त्री को कलहांतरिता कहते हैं । यथा—नायिका कहती है मैं रसना और नयना तुम दोनोंने पिया से कलह कराया सो, कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि तुम्हारा नामही है रसना अर्थात् रस नहीं और नयना अर्थात् नीति नहीं । परन्तु कर अर्थात् प्रीति करानेवाला जो हाथ है उसने पिय को हटक दिया । हाय यह बड़ा अनुचित हुआ ।

रसना, मति इन नयना निज गुण लीन ।
कर तै पिय भिन्निकारे अजगुति फीन ॥

(४) विप्रलब्धा ।

विप्रलब्ध अकुलाय, पिय विहीन संकेत लखि ।
कहां गयो पिय हाय, सेज फूल अब शूल सम ॥

भा०—रति संकेत में पीतम को न देखकर व्याकुल होनेवाली स्त्री को विप्रलब्धा कहते हैं । यथा—संकेत स्थान में नायक को न पाकर नायिका कहती है हा प्राणनाथ तुम कहा चले गये यह सेज के फूल अब मुझे शूल के सदृश लगते हैं ।

(५) उत्कंठिता ।

उत्का सोच सरेट में, क्यों आयो नहिं कंत ।
रात जात सिय रात सब, पिय विलमे कहैं अत ॥

भा०—जो स्त्री रतिस्थल में जाकर प्रीतम के आने में विजम्ब देख चिन्तित होती है उसे उत्कंठिता अथवा उत्का कहते हैं । यथा—मन रात बीती जाती है न जाने पिया दूसरी जगह कहा विलम रहे है ।

(६) वासकसज्जा ।

वासकसज्जा सेज सज, पीय मिलन के काज ।
सजी सेज पिय मिलन हित, सांजदितें तिय आज ॥

भा०—निश्चयही प्रीतम का मिलाप जानकर सभोग सामग्री सजित (अर्थात् तैयार) करनेवाली स्त्री को वासरुमजा कहते हैं। यथा—पिय मिलाप के लिये नायिका ने आज सांझही से सेज सजा रक्खी है।

(७) स्वाधानपातका ।

स्वाधिनपतिका के रहत, पिया सदा 'आधीन ।
पिय आपुहि अन्हवाय तिय, सकल सिंगारहु, कीन ॥

भा०—जिस स्त्री का पति सदाही उसके वशीभूत रहे उसे स्वाधिनपतिका कहते हैं। यथा—नायिका को नायक ने स्वयं अपने हाथों से स्नान कराया और सोलहों शृंगार भी किये अर्थात् नायक नायिका के सब प्रकार आधीन है।

(८) अभिसारिका ।

अभिसारिक बुलवै पियहि, कै आपुहि चलि जाय ।
करि सिंगार भूषण पहिरि, तिया चली हरपाय ॥

भा०—पिय सभोगार्थ सकेत रतिस्थानमें स्वयं जानेवाली अथवा प्रीतम को बुलानेवाली स्त्री को अभिसारिका कहते हैं। यथा—नायक से मिलने के लिये नायिका शृंगार कर और आभूषण पहिन हर्षित होती हुई चली जा रही है। इसके तीन भेद हैं। दिन में जानेवाली दिवाभिसारिका, अंधेरी रात में जानेवाली कृष्णाभिसारिका और चादनी रात में जानेवाली शुक्लाभिसारिका।

(९) प्रवत्स्यत्पतिका ।

प्रवसित पतिका सोड, चलन चहत परदेश पिय ।
रही विकल हिय दोइ, भोरहिं तें पिय गमन, लखि ॥

भा०—प्रीतम का विदेश जाना निश्चय होने से व्याकुल होनेवाली स्त्री को प्रवत्स्यत्पतिका कहते हैं। यथा—आज पिय विदेश जायेंगे इस कारण प्रातः काल ही से नायिका विकल हो रही है। यथा—

(१०) आगतपतिका ।

आगतपतिका मुदित बहु, बहुरत पिय परदेस ।
मुनि आगम पिय तरकिगे, वन्द कंचुकी बेस ॥

भा०-प्रीतम के विदेशागमन से ध्यानदित होनेवाली नायिका को आगतपतिका कहते हैं । यथा—पिय का आगमन सुनकर हिय में इतनी प्रसन्न हुई कि मारे उमग के कंचुकी के वद तडक गये ।-



अथ नायिका नायकवयस वर्णन ।

अमुक उर्ष तक अमुक नायिका होती है इस बात का निर्धारण करना महा कठिन है कोई वार्षिक नियम स्थिर करना प्रकृति देवी के प्रतिकूल चलना है अगो के चिन्ह तथा स्वभावानुसार तो अवस्था पलटतीही जाती है यही प्राकृतिक नियम अचल है देशभेद तथा प्रकृत्यनुसार कवियों के अनेक मतभेद हैं इनमे से कोई मर्यानुकूल नहीं तथापि स्थूलमान से पूर्व कथित कुछ भेद इस अभिप्राय से लिखे जाते हैं कि जिसमे काव्य मे व्यवहृत अनेक शब्दो का भाव विदित होजावे । शृंगार प्रकरण म केवल युवती और युवक का ही वर्णन होता है नायिका कव तक युवती कहाती ह इस विषय मे एक प्रमाण यह है—

विशाखातागतामेघा, प्रसूतांतंच यौवनम् ।

प्रणामातः सत्ताकोपो, याचनातहि गौरवम् ॥

अर्थात् प्रसूत तक ही नायिका का यौवन है । अन्य स्थान मे वयस का प्रमाण यो है—

अष्ट वर्षा भवेत् गौरी, नव वर्षातु रोहिणी ।

दशमे कन्यका प्रोक्ता, अतः ऊर्द्ध रजस्वला ॥

दूरनेर कवि यो लिखते हैं—

सात बरस लौं जानिये, कन्या को परमान ।

तेरह लौं गौरी बहुरि, बालाबैस निदान ॥

तरुणी हैं तेईस लो, प्रौढ़ा पुनि चालीस ।

इह विधि तिय वय को कहत, जे कहात कवि ईश ॥

अन्य कवि का कथन यो है—

साढ़े दसयें वर्ष लौं, गौरी वयस प्रमान ।

पुनि साढ़े चौतीस लो, लक्ष्मी वयस मुजान ॥

बहुरि वर्ष पैतीस लौं, वैस सरस्वति जान ।

साढे दशयें वर्ष तें, मुग्धापन दरसाय ।
 पुनि सोलहवें वर्ष लौ, रहै सुनौ कविराय ॥
 बहुरि सोरहें वर्ष तें, मध्यापन लागि जाय ।
 रहै बीसये वर्ष लौ, कहैं सकळ कविराय ॥
 फेर बीसयें वर्ष तें, मौढा हांय सुजान ।
 साढे चौविस लौ रहै, कह चिरजीव महान ॥
 (इन महाशय की जांच परनाल चमत्कारिक है)

एक ओर कवि महाशय ने निम्नांकित नाम रूहे हैं —

रजो दर्शन से तीन महीने तक अक्षुरित योवना, ६ महीने तक नवलवधू, १४ वर्ष मे नवयोवना, १५ मे नवल अनगा, १६ मे सलजा वा ज्यामा, १६ मे प्रगल्भा, २० मे सुरत विचित्रा, २१ मे प्रोढा, २२ मे रतिकोविदा, २३ मे बहूमा, ओर २४॥ मे सुभर्मा (गृहिणी)

साराश यह है कि स्थूलमान से ११ से १५ तक मुग्धा, १६ से २३ तक मध्या और २४ से ४० तक प्रोढा कहाती है ।

नायकों के वर्णन मे भी युवक का ही वर्णन होता है इनके वयभेद शृंगार रसके ग्रन्थो मे नहीं दिये गये न इनकी आवश्यकता है हां पुरुष के वयभेद ग्रन्थो में इस प्रकार मिलते हैं —

वर्ष	अवस्था	वर्ष	अवस्था
१-३	शिशु	६७-४०	तरुण
३-५	कुमार	४०-७०	मध्य
५-१०	पाण्ड	७०-६०	वृद्ध
१०-१५	किशोर	६०-१००	जरा
२६	वाल		

नायिका भेदों का संक्षिप्त विवरण ।

वर्णानुसार ३-दिव्य (देवतिय), अदिव्य (नरतिय), दिव्यादिव्य (ससार मे जन्मी हुई देवतिय)

जात्यनुसार ४-पद्मिनी, चित्रिनी, जखिनी, हस्तिनी ।

प्रकृत्यनुसार ३-उत्तमा, मध्यमा, अधमा,

मेमानुसार २-जैष्टा, कनिष्ठा ।

वर्मानुसार ३-स्वकीया, परकीया, सामान्या ।

स्वभावानुसार ३-अन्य सुरत दुःखिता, मानवती, गर्विता ।

गर्विता ३ प्रकार-प्रेमगर्विता, रूपगर्विता, गुणगर्विता ।

स्वकीयाकी अवस्था अर्थात् वयक्रमानुसार ३ भेद-मुग्धा, मध्या, प्रौढा ।

मुग्धा के २ भेद-अज्ञात योजना, ज्ञात योजना ।

मध्या और प्रौढा के मानानुसार ३ भेद-वीरा, अधीरा, धीराऽधीरा ।

प्रौढा के क्रियानुसार २ भेद-रतिप्रीता, ध्यानन्द राम्मोहिता ।

परकीया (ऊढा १, अऊढा २) इनके छे छे भेद-गुमा, विदग्धा, ललिता, कुलटा, अनुशयाना, मुद्रिता ।

सामान्या-गणिका जिसे जेष्ठ्या, वारवध, चागगना, रामजनी, रती इत्यादि कहते हैं इसके भेदापभेद सारहीन जानकर छोड़ दिये गये ।

दशानुसार नायिका भेद १०-मुग्धा, मध्या, प्रौढा और सामान्या इन प्रत्येक के दसोदस भेद हैं-प्रोथितपतिका १, खाडिता २, फलहातरिता ३, विप्रलब्धा ४, उत्कठिता ५, चामक-सज्जा ६, स्वाधीनपतिका ७, अभिमार्जिका ८, प्रमन्यत-पतिका ९, और आगतपतिका १० ।

नायक

-नायक गुण पंडित युवा, युवती रीझहिं देय ।

ललाकि रहीं ब्रजनायिका, निरखि श्याम को भेखा ॥

भा०-सुन्दर गुण रूप यौवन सम्पन्न युवा जिराका गिर्या शृंगार दृष्टि

ने देखे और जो काव्य राग, रस का घेत्ता (घाता) हो उसे नायक कहते हैं । यथा-श्रीकृष्णाचन्द्र के स्वरूप को देखकर ब्रज की नायिकाएँ जलचाय गयीं अर्थात् मोहित हो गईं । पुनर्यथा-

दोरे को न नितोकिने, रसिक रूप अभिराम ।

द्विविध नायक ।

द्वै विप्र के नायक कहे, कविजन सहित विचार ।
मानी होत स्वभाव सौ, प्रोषित दशानुसार ॥

भा०—नायक के स्वभाव (प्रकृति) अनुसार तथा दशानुसार का भेद है, अर्थात् प्रकृति अनुसार (मानी) और दशानुसार (प्रोषित)

पानी ।

करै जु तिय पै मान पिय, मानी कहिये सोय ।
रूस रहे पिय प्रेम में, करत न ऐसो कोय ॥

भा०—प्रिया प्रति । मान करनेवाले पुरुष को मानी नायक कहते हैं । यथा—हे पिय प्रेम में क्यों रूस रहे हो प्रेम ता कोईभी नहीं करता ।
पुनर्यथा—

जगन जुगुप्सा है जियत, तज्यो तेज निज भान ।
रूस रहे तुम प्रेम में, यह यो कौन मयान ॥

प्रोषितपति ।

सो पति प्रोषित जानिये, विकल विरह तें होय ।
कबधौ कंठ लगाइवी, प्यारी को, मुख जोय ॥

भा०—प्रिया के नियोग होने से स्तनापित नायक को प्रोषितपति कहते हैं । यथा—हा वह सुन्दर अवसर न जाने कब प्राप्त होगा जब अपनी प्राणप्यारी का मुख देखकर उसको कंठ से लगाऊंगा । पुनर्यथा—

'लोकन सँवारो तो सँवारो ना विगारो कहु लोकन' सवारि नर नारि ना सँवारो तो । कीन्हो, नर नारि तो ना प्रेम को प्रचार देतो प्रेम को प्रचारो तो ना मन को प्रचार तो ॥ मन को प्रचारो तो प्रचारो ना संयोग देतो कीन्हो जो संयोग तो वियोगना विचार तो । नन्दराम कीन्हो जो वियोग विधना तो भूलि वोरि बने वागन वसन्त ना बगार तो ॥

ए करताए तिनै सुनौ वास को लोकनि को अवतार कगे जनि ।
लोकन को अवतार करौ तो मनुष्यन को तो सँवार कगे जनि ॥
मानुष ह को सँवार कगे तो तिनै विच प्रेम प्रचार करौ जनि ।
प्रेम प्रचार करौ तो दयानिधि केहु वियोग विचार करौ जनि ॥

नायक भेद ।

धर्मानुसार नायक के तीन भेद हैं अर्थात् नायक तीन प्रकार के हैं पति, उपपति, अंगिर ।

पति ।

जो विधि सों व्याधो तियहिं, सोई पति मव ठौर ।

जब तें प्रग आई प्रिया, लाल लगत नहिं और ॥

भा०—जो नायक रीत्यनुसार 'नायिका' के साथ पाणि ग्रहण करता है, उसे पति कहते हैं । यथा—जब से लाल प्रिया को विवाह कर घर लाये है, तब से अन्य की ओर देखने भी नहीं है ।

पति के पांच उपभेद ।

अनुकूलरु दक्षिण बहुरि, बृष्टरु गठ अनभिज्ञ ।

पाच भाति के पति रहे, जे कवि काव्य अभिज्ञ ॥

भा०—पति पांच प्रकार के होते हैं (१) अनुकूल, (२) दक्षिण, (३) बृष्ट, (४) गठ और (५) अनभिज्ञ ।

अनुकूल ।

निज पतनी में रत सदा, सो अनुकूल बखान ।

धन्य राम जिन जग सदा, एक तिया व्रत ठान ॥

भा०—जो पुरुष निज विवाहिता एकही स्त्री से प्रेम रखकर पत्नी से विमुख रहता है उसे अनुकूल कहते हैं । यथा—श्रीरामचन्द्रजी को धन्य है जिन्हो ने मसान में मदैर एक तिय व्रत का पालन किया । यथा—

टाकत हैं एक सग खरे इक मग ही बोलत हैं मन भायक ।

दूसरी बात न जानत ये निशि वानर मग रहे सुखदायक ॥

कौन करै समता इनकी गनिये इन्ह का सदा खग नायक ।

देखि परे खग राजन में इक भागस साचे विपारत लायक ॥

दक्षिण ।

बहु नारिन को सुखद मम, मो दक्षिण पनि जान ।
मन मोहन ब्रज तिगन पै, रागवत प्रेम समान ॥

भा०—अनेक स्त्रियों पर नमान प्रीति करनेवाले पुरुष को दक्षिण कहते हैं । यथा—मनमोहन ब्रज नागियों पर एक समान प्रेम रखते हैं ।

निज निज मन के चुनि सवे, फल लेहु डरु वार ।
यह कहि कान्ह कदम्ब ली, हरण हिलाई डार ॥

धृष्ट ।

धृष्ट कलंकी निलज पुनि, करै दोष निरशक ।
ज्यों ज्यों बरजत ताहि तिय, त्यों त्यों लागन अंक ॥

भा०—अत्यन्त अपमानित होने पर भी नम्र लज्जाहीन, अथम, निष्प्रक अपराध करनेवाले पुरुष को धृष्ट कहते हैं । यथा तिय ज्यों ज्यों वर्जती है त्यों त्यों नायक अंक में लगता जाता है, अर्थात् प्रिकारों पर भी नहीं मानता ।

शठ ।

शठ सावत निज काज, मुख मीठी हिय कपट मय ।
प्यारी गारी आज, मिसरी ते मीठी लगै ॥

भा०—कृतप्रवृत्त अपराध छिपाने में चतुर तथा अपना काज साधने के निमित्त मधुर-भाषी पुरुष को शठ नायक कहते हैं । यथा—प्यारी आज की तुम्हारी गाली हमको तो मिश्री से भी अधिक मीठी लगती है । यहा कृत से अपना कार्य साधने के लिये ही नायक ने गालियों को मीठी बताया है ।

अनभिज्ञ ।

नहिं बूझत अनभिज्ञ है, नारि विद्यास अनेक ।
करि हारी सब जनन तड, बलम न समुझे नेक ॥

भा०—दुगारादि रसानुकूल विद्या का यथोचित ज्ञान न होने वाले पुरुष को अनभिज्ञ कहते हैं । यथा—नायिका सब प्रयत्न करके थक गई परन्तु बलमजी कुछ भी नहीं समझे ।

उपपति ।

उपपति ताहि बखानही, जां परतिय के मीत ।
व्याह प्रथा जिन निगमई, करी बडी अनरीत ॥

भा०—अन्य की स्त्रियों पर अनुगृह्य रहनेवाले पुरुष का उपपति कहते हैं । यथा—जिन्होंने व्याह की रीति चलाई है, उन्होंने बड़ी अनरीत की है । अभिप्राय यह है कि अन्यत्र (बाहर) जाना यथेच्छ नहीं बन पड़ता । अर्थात् निज स्त्री के कारण पर स्त्री गमण करने का अवसर नहीं मिलता ।

उपभेद ।

यामे दोय प्रकार के. उपपति भेद बखान ।

वचन चतुर दुरु है, तदा, क्रिया चतुर रिय जान ॥

भा०—दुरा (उपपति) के दो भेद हैं १ वचन चतुर और २ क्रिया चतुर । (विय=दूसरा)

वचन चतुर ।

वचन चतुर साधत सदा, चतुर उक्ति सों काज ।

तुव घर पैठियां चोर इत, प्रिया फिरत कहें आज ॥

भा०—वचन चातुरी से अपना कार्य साधने वाले पुरुष को वचन चतुर कहते हैं । यथा—प्यारी आज तु यहा कहा फिरती है तेरे घर में नौ चोर घुसा है । अभिप्राय यह है कि नायिका शीघ्र अपने सूने घर में वापिस जावे और सहायतायें नायक को भी साथ लेती जावे इसी कहाने से नायक अपना अभीष्ट संपादित करता है ।

क्रिया चतुर ।

क्रिया चतुर रचि छल क्रिया, साधत अपनो काज ।

नैन मंदि सुनित क्रियो, प्रिया माऊ मिलु आज ॥

भा०—छल क्रिया करके अपना कार्य साधनेवाले पुरुष को क्रिया चतुर नायक कहते हैं । यथा—मेध मंदकर नायक ने यह सूचित किया

वैशिक ।

वार वधुन को रसिक स्वइ, वैशिक अलज अभीत ।
वहुत फजीहतहू भये, तजत न गणिका प्रीति ॥

भा०-वेश्यानुरागी तथा निर्लज्ज और निडर पुत्र्य को वैशिक कहते हैं। यथा-अत्यन्त फजीहत होने पर भी गणिका से प्रीति नहीं छोड़ता ।

नायक भेदों का संचित विवरण ।

स्वभावानुसार—मानी ।

दशानुसार—प्रापित ।

धमानुसार ३—पति, उपपति, वैशिक ।

पति के ४ उपभेद—अनुकूल, दक्षिण, वृष्ट, शठ, धनभिद्र ।

उपपति २ उपभेद—वचन चतुर, क्रिया चतुर ।

वैशिक के उपभेद नहीं हैं ।

नायिका के सदृश नायक के भी उतनेही भेदोपभेद हा सके हैं परन्तु उनमें स्मर न जानकर आचार्यों ने मुख्य मुख्य भेद ही वर्णित करना उचित समझा, बुधजन इतनेही से विचार कर लेंगे ।

इति शृंगार रस ।

(२) हास्यरस ।

थाई जाको हास्य है, वहै हास्य रस जानि ।

तहँ कुरूप कदव कहव, कछु विभाव ते मानि ॥

भेद मध्य अरु ऊच स्वर, हँसिबोई अनुभाव ।

हरष चपलता औरहू, तहँ संचारी भाव ॥

स्वैत रंग रस हास्य को, देव प्रमथ पति जाव ।

ताको कहत उदाहरण, सुनतहि आवे हास ॥

भा०-जिस रस का स्थायीभाव हाम हो उसे हास्यरस कहते हैं, कुरूपता मटक और अनुचित कहना उदीपन और इसके पात्र

विभाव है इसी प्रकार मध्याह्न स्वर है मना धनुभाव तथा हर्ष चपलता (चञ्चलता) आदि सच्चागीभाव माने हैं, इसका रंग श्वेत और प्रमथ देवता है । यथा—

ऊँचों तैरे यार पेमें हे हे रिभवार जाय जानती विचार ताँपे
सूधों हो न जायगें । कर्ता विचार भाति भाति के सुभाय भाय केती
बड़ी बात हुती वाकां अटकायवों ॥ ग्याल कवि पीठन पे एरु एरु हाडी
वापि नीके मनमोहन को करती रिभायवों । यातो कहूँ कोई बहुरुपिमा
बलास करि भीख लेती हम स्व कृवर बनायवों ॥

रग में कसर नाहा रग में कसर नाही लाग में कसर नाहि
लाजहूँ की घेरी हैं । रग में कसर न कसर है उमगह में प्रण के प्रसगहु
में परम घनेरी है ॥ ग्याल कवि हाव में न भाय में कसर यहा चाव में
कसर ना चलाक वहुनेरी है । तीन है कसर ऊँचो काहूँ के न कुव इहा
नाग्न न जाति अरु काहूँ की न चेरी है ॥

आजु को कहें तो आठ मास लों न लागे ठीक काल्ह जो कहे तो
मास सोगह चलायहीं । पाच दिन कहे पाच बरस, निताय देहि पाख जो
कहे तो लें पचाम पहुँचावहीं ॥ मन्त प्रधान जोंपै ताहूँ पे न त्यागे द्वार
आपना लजान के वाहूँ को लजायहीं । ऐसे मस्यवादी मग्दार हैं देख्या
जहा कहे को परेया तहा जीयत ला पावहीं ॥

सुम पतनी मों कहै सुन सपने की बात अकथ कहानी रात
बरवस्य हारो तो । चानी में खरो तो जिमी गाड़ के धरो तो ताहि मन में
विचार खोदि हाथ के निकारो तो ॥ इतने में आयो कविराज एरु ताहि
समें पढो ता कवित्त हा तो दीवा अनुसारो ता । हो तो कुल दाग बडे
जेठन के भाग अरी जाग न परी तो म रपेया देइ डारी तो ॥

दानी कोउ नाहि ना गुलाबदानी गोददानी पीकदानी घनी शोभा
इनहीं में लहे है । मानत गुणी को गुणही में प्रगटत देख्यो यातें गुणी
जन मन साप्रधानी गहे है ॥ हयदान हेमदान गजदान भूमिदान सुकवि
मुनाये ओ पुरानन म कहे है । अवतौ कलमदान जुजदान जामदान खान-
गन पानदान कहिवे को रहे है ॥ पौर के कियार देत, धरै सबै गारि देत
सापुन को दोष दत प्रीति ना चहत है । मांगने को ज्वाब देत बात कहे
रोय देत जेत देत भाज देत ऐमें निबहत हैं ॥ पागहूँ के बद् देत वारन
को गाठ देत पदनि की कात्र देत देतई रहत हैं । एते पै सबै कहे दाऊ

वैशिक ।

वार वधुन को रसिक स्वड, वैशिक अलज अभीत ।
बहुत फर्जीहतहू भये, तजत न गणिका प्रीति ॥

भा०-वेष्ट्यानुरागी तथा निर्लज्ज और निटर पुरुष को वैशिक कहते हैं । यथा-अत्यन्त फर्जीहत होने पर भी गणिका में प्रीति नहीं छोड़ता ।

नायक भेदों का संक्षिप्त विवरण ।

स्वभावानुसार—मानी ।

दशानुसार—प्रापित ।

धमानुसार ३—पति, उपपति, वैशिक ।

पति के ४ उपभेद—अनुकूल, दक्षिण, शृष्टं, गड, अनभिज्ञ ।

उपपति २ उपभेद—वचन चतुर, क्रिया चतुर ।

वैशिक के उपभेद नहीं हैं ।

नायिका के सट्टण नायक के भी उतनेही भेदोपभेद हो सकते हैं परन्तु उनमें मार न जानकर आचार्यों ने मुख्य मुख्य भेद ही बणन करना उचित समझा, बुधजन इतनेही से विचार कर लगे ।

इति शृंगार रस ।

(२) हास्यरस ।

थाई जाको हास्य है, वही हास्य रस जानि ।

तहँ कुरूप क्रद्व कइव, म्लु विभाव ते मानि ॥

भेद मध्य अरु ऊंच स्वर, हँसियोई अनुभाव ।

। डरप चपलता औरह, तहँ सचारी भाव ॥

स्वेत रग रस हास्य को, देव प्रमथ, पति जाभ ।

ताको कहत उदाहरण, सुनतहि आवे हास ॥

भा०-जिस रस का स्थायीभाव हान्य हो उसे हास्यरस कहते हैं, कुरूपता मटक और अनुचित कहना उद्दीपन और इमके पात्र आलम्बन

प्रिभाव हैं इसी प्रकार मथ्योच्च स्वर हँसना अनुभाव तथा हर्ष चपलता (चञ्चलता) आदि सञ्चारीभाव माने हैं, इसका रग श्वेत और प्रमद देवता है। यथा—

ऊँचो तेरे यार पेमें हे है रिक्कवार जाय जानती विचार तो
 रुधौ हो न जायवो। करती प्रिचार भाति भाति के सुभाय भाय केत
 बडी वात दुती चाको अटकायवा ॥ ग्वाल कवि पीठन पै एक एक हार्ड
 वाप्रि नीके मनमाहन को करती रिक्कायवो। यातो कह काई बहुरपिय
 बलास करि सीर लेती हम मय क्वर बनायवो ॥

रूप में कसर नहीं गग में कसर नहीं लाग में कसर नाहि
 लाजह की घेरी है। रग म कसर न कसर है उमगह में प्रण के प्रसगह
 में परम घनेरी है ॥ ग्वाल कवि हाव में न भाय में कसर यहा चाव में
 कसर ना चलाक बहुतेरी है। तीन है कसर ऊँचो काह के न क्व इहा
 नाहन न जाति अरु काह की न चेरी है ॥

आजु को कह तो आठ मास लौं न लागे ठीक काल्ह जो कहें तो
 मास सोरह चलायही। पाच दिन कहे पाच बरस विताय देहि पाख जो
 कहें तो तो पचाम पहुँचायहीं ॥ भनत प्रधान जाँपे ताह पे न न्यागै द्वार
 आपना लजात फेर बाह को लजायही। ऐसे सत्यवादी सरदार हँ देखा
 जहा काहे को पंखा तथा जीवत लो पावहीं ॥

सुम पतनी सो रहै सुन सपने की वात अकथ कहानी रात
 बरवस हारो तो। चानी में खरो ता जिमी गाड के धरो तो ताहि मन में
 प्रिचार खोटि हाथ के निकारो तो ॥ इतने में आयो कविराज एक ताहि
 समे पढो ता कबित्त हो ता दीयो अनुमारो तो। हो तो कुल दाग बडे
 जेठन के भाग अरी जाग न परो तो में रपेया देइ डारी तो ॥

दानी कोउ नाहि ना गुलाबदानी गोददानी पीकदानी धनी गोभा
 इनहीं में लहे है। मानत गुणी को गुणही में प्रगटत देख्यो यातें गुणी
 जन मन सावधानी गहे हैं ॥ हयदान हेमदान गजदान भूमिदान सुकपि
 सुनाये ओ पुगानन में कहे हे। अवनो कलमदान लुजदान जामदान खान
 जान पानदान कहिये को रहे है ॥ पांग के किवार देत घरै सबे गारि देत
 साधुन को दाय देत प्रीति ना चहत हैं। मागने को ज्याव देत घात कहे
 रोय देत लेत देत भाज देत पेमे निबहत हैं ॥ पागह के बद् देत वारन
 की गाठ देत पंथेनि की काड देत देतई रहत है। एते पै सर्वई कहें दाऊ
 देत नाहीं दाऊन तो पायो जाम देत रहत हैं ॥

पान ते ज्ञान की रागन पुनि विन पान खुसी नहि हात है बानी ।
 चाहत हैं सब जागी जती अर देवन में महादेपहु घानी ॥
 याकी ममान न आन कछु मुहि दीखत हैं जग मुक्ति निसानी ।
 नग ते ऊची तरंग उठैं जब अग में आवाति भग भवानी ॥
 शम्भु को पाहन बैल बली वनिताहु को वाहन सिंहहि पेरिके ।
 मृसे को वाहन है सुत एक सो दुर्जा मयूर के पक्ष विणेशिके ॥
 अरण्य है कवि चैन फनिन्द के तैर परे सब तें सब लेखिके ।
 तीनहुँ लोक के ईश गिरीश जो योगी अये घर की गति देखिके ॥

जल पीये तो पीये न खाये कहु जिहि चित्त नहीं अभिलाखिये है ।
 वर वित्त की बात कछु न करे मनहूते कछु नहि भाखिये है ॥
 नित नित कपित्त करे जसके जिहि प्रेम सुधारस चाखिये है ।
 कहुँ कोउ जो ऐसा मिले कवि एक सुता हमहु कहुँ राखिये है ॥

हसि हँसि भजे देखि दुलह दिगवर को पाहुने जे आवें हिमाचल
 के विवाह में । कहै पदमाकर सुकाह सो कहै को कहां जोई जहा देखे
 सो हँसेई तहा राह में ॥ भगन भयेई हँसै नगन महेश ठाढे आरउ हँसेउ
 हँसे हसी के उमाह में । सीस पर गंगा हंस भुजनि भुजगा हँसै हासही
 को दगा भयो नगा के विवाह में ॥

वर अनुहार वगत न भाई । हँसी करैहहु पर पुर जाई ॥
 विष्णु वचन सुनि शिव मुसकाने । निज निज सेन सहित विलगाने ॥
 नाना जिनिस देखिकर कीसा । पुनि पुनि हँसत कोशला सीसा ॥

शक्ति शास्त्रम् ।

(३) करुण रस ।

आलम्बन-प्रिय को मरण, उद्दीपन दाहादि ।
 याई जाको शोक जहँ, वहे करुण रस यादि ॥
 रोदन महिपतनादि जहँ, वरणत कवि अनुभाव ।
 निर्वेदादिक जानिये, तहँ संचारी भाव ॥
 चित्र कबूतर के वरण, वरुण देवता जान ।
 या विधि को या करुण रस, वरणत कवि कविताने ॥

भा०—प्रिय वधु आदि की अपार हानि व मरण आलम्बन, तथा उनकी दु खित दशा वा मृतक का दाह कर्म, उनकी प्रिय वस्तुओं का दर्शन गुण श्रवण आदि उद्दीपन, रोना, पृथ्वी पर गिर पड़ना आदि अनुभाव भाग्य की निन्दा पश्चात्तापादि संचारी भाव और शोक जिसका स्थायीभाव है, उस रस को करुण रस कहते हैं । रग इसका कवरा कभूतरसा और देवता इसका धरुण है । यथा—

पुर तें निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दये मग मे डग डे ।
 भलकीं भरि भालकनी जल की पट सूख गये मधुराधरवै ॥
 फिरि वृभक्ति हैं चलनोऽव कितो पिय पर्ण कुटी करिहो कित है ।
 तिय की लखि आतुरता पिय की अखिया अति चाख चलीं जल चरे ॥

इति करुण रस ।

(४) रौद्ररस ।

थाई जाको क्रोध अति, वहै रौद्ररस नाम ।
 आलम्बन रिपु रिपु उमड़, उद्दीपन तिहि ठाम ॥
 भृकुटि भंग अति अरुणई, अधर दसन अनुभाव ।
 गरव चपलता औरहू, तहँ संचारी भाव ॥
 रक्त रंग रस रौद्र को, रुद्र देवता जान ।
 ताको कहत उदाहरण, सुनहु सुमति दै कान ॥

भा०—क्रोध की पुष्टता (स्थिरता) को रौद्ररस कहते हैं रिपुही इसका आलम्बन है और रिपु की उमग उद्दीपन है, इसी प्रकार भ्रमगता तथा नेत्रों की अरुणाई, अधर दशनादि अंगों का स्फुरणादि (फरकना) अनुभाव है और गर्व (अभिमान) तथा चपलतादि संचारी भाव है इसका रक्त (लाल) वर्ण और रुद्र देवता है । यथा—

वारि डारि डारों कुमरुणहि विदारि डारों मारो मेघनादे आज
 यो बल अमन्त हो । कहै पदमाकर त्रिकुटही को ढादि डारों डारत करैई
 यातुधानन को अत ही ॥ अन्धहि निरच्छ कपि मच्छ है उचारों इमि
 डारि डारों एकदि उचारि

जैसो तैं न मांसो कह नैकह उगत दुतो गेसो अथ हो ह तोसो
नेकह न हरिहो । कहै पदमाकर प्रचड जो परेगो तो उमड करि
तोसो भुजदड ठाकि जरिहो ॥ चलो चलु चलो चलु विचलु न बीचहीत
कोच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचगिहो । पर दगादार मेरे पातक
अपार तोहि गग की कडार मे पडार द्वार करिहो ॥

वोरौ सबै रघुवस कुठार की धार मे वाग्न वाजि सग्यथहि ।
वान के वायु उडाय के लच्छन लच्छी करौ अग्निहा समरथ्यहि ॥
रामहि वाम समेत पडे वन सोक के भार मे भूजो भग्यथहि ।
जो धनु हाथ लियो रघुनाथ तो आनु अनाथ करो दगरथ्यहि ॥
तु० रा०-जो शत शर करहि सहाई । तदपि हतौ रण राम दुहाई ॥

शति रौद्रराम ।

(५) वीररस ।

जा रस को उत्साह शुभ, है इक थाई भाव ।
सुरस वीर है चार विधि, कहत सबै कविराव ॥
युद्ध वीर इक नाम है, दयावीर विय नाम ।
दानवीर तीजो सुपुनि, धर्मवीर अभिराम ॥
युद्ध वीर को जानिये, आलम्बन रिपु जोर ।
उद्दीपन ताको तबहि, पुनि सेना को सोर ॥
अंग फरकत दग अरुणई, इत्यादिक अनुभाव ।
गरव असूया उग्रता, तह सचारी भाव ॥
चन्द्र देवता वीर को, कुन्दन वरण विशाल ।
ताको कहत उदाहरण, सुनि जन होत खुशाल ॥

भा०-जिस रस का सुन्दर उत्साह पूर्ण स्थिर (स्थायीभाव) हो
उसे वीररस कहते हैं इसके चार भेद हैं, १ युद्धवीर, २ दयावीर, ३
दानवीर, ४ धर्मवीर । रिपु का विभवही युद्धवीर का आलम्बन है और
सेन्य के मार वाधादि तथा (करखागानादि) कोलाहल उद्दीपन है इसी

प्रकार तथा अग स्फुरण नेत्रों की अरणाई अनुभाव है और गर्व्य असूया (अर्थात् शत्रु को पराजित करने की अभिलाषा) उग्रतादि सचारी है इसका देवता चन्द्र सुन्दर सुवर्ण वर्ण है ।

युद्धवीर ।

सोहैं अस्त्र आंढे जे न छोड़ें सीस सगर की लगर लगूर उच्च ओज के अतका में । कहैं पदमाकर त्यों हुकरत फुकरत फैलत फलात फाल बाधत फलका में ॥ आगे रघुवीर के समीर के तने के सग तारीदे तडाक तडा तडके तमका में । सका दे दसानन को हका दे सुवका वीर डका दे विजे को कपि कूट पन्यो लका में ॥

भोगते साभलों सूर चलैं अर शूर चले हैं कवन्ध परे लो ॥
ये सिरताज गनी मन को प्रण तो न टरे दुहु लोक टरे लो ।
पेसी वही अरवी गरवी शिव शकरहृ यमलोक डरे लो ।
सो सिर काटि गनी मन के तरवार वही तरघा के तरे लो ॥

धनुष चढायत भै तवहि, लखि रिपुकृत उतपात ।

हुलनिगात रघुनाथ को, बखनर में न समात ॥

इतना कहत नीति रस भूला । रण रस विटप पुलक मिस फूला ॥

दानवीर ।

दान समय को ज्ञान पुनि, याचक तीरथ गौन ।

दानवीर के रहत है, ये विभाव मति भौन ॥

वृण समान लेखत सुधन, इत्यादिक अनुभाव ।

ब्रीडा हरपादिक गनौ, तहैं सचारीभाव ॥

भा०—दान उत्साह की पुष्टता को दानवीर कहते हैं याचक और तीर्थ गमनादि इसका आलम्बन है और दान समय का क्षानोत्साह उद्दीपन है तथा अहृषणता और सर्वस्व देने की उदारता अनुभाव है और ब्रीडा हर्षादि सचारी हैं । यथा—

सम्पति सुमेर की कुन्द की जु पावे ताहि तुरत लुटायत विलय उर गारे ना । कहैं पदमाकर सो हेम हय हाथिन के हजके हजारन के पितर विचारै ना ॥ गज गज बरस महोप रघुनाथगज गजही के धोये कहूँ काहूँ देह टारै ना । याही उर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरि ते

वकसि वितुल दये झुडन के झुड रिपु मुडन की मालिका दई
ज्यो त्रिपुरागी को । कहै पदमाकर करारन को कोप दये पोटपह दीन्ह
महादान अधिकारी को । ग्राम दये ग्राम दये अमित आराम दये अन्न
जल देने जगती के जीवधारी को ॥ टाता जयसिंह दोय बातें तो न दीनी
कहू बैरिन को पीठि और दीठि पर नारी को ॥

तु० रा०—जो सपति शिव रावणहिं, दीन्ह दिये दश माथ ।
सो सपदा विभीषणहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥

दयावीर ।

दयावीर में दीन दुख, वरणत आदि विभाव ।
दूर करव दुख मृदु कहव, इत्यादिक अनुभाव ॥
सुधृति चपलता औरहूँ, तहँ सचारी भाव ।
दयावीर वरणत सबै, याही विधि ऋविराव ॥

भा०—दीनता देखकर जो चित्त में दया की स्थिरता होती है
वही दयावीर है इसमें दीनताही आलम्बन है मधुर वाक्यों द्वारा दुख
दूर करने की चेष्टा कर्मा अनुभाव है, दीन दुख वर्णन उद्दीपन, धृति
और चपलता सचारी है । यथा—

पापी अजामिल पार कियो जेहि नाम लियो सुतही को नरायन ।
त्यों पदमाकर लात लगे पर विप्रहृ के पग चौगुने चांयन ॥
को अस दीन दयाल भयो दशरथ के लाल से मूने सुभायन ।
दौर गयद उवारिबे को प्रभु वाहन छोड़ि उपाहने पायन ॥

तु० रा०—सुनि सेवक दुख दीनदयाला । फरकि उठौं हूँ भुजा विशाला ॥

धर्मवीर ।

धर्मवीर के कवि कहत, ये विभाव उर आन ।
वेद सुमृति शीलन मदा, पुनि पुनि मुनव पुरान ॥
वेद विहित क्रम वचन वपु, औरहु है अनुभाव ।
धृति आदिक वरणत सुकवि, तहँ संचारीभाव ॥

भा०—वेद स्मृति के वाक्यों में मान्यशीलता आलम्बन तथा
पुगणादि श्रवण उद्दीपन विभाव है वेदविहित कर्म अनुभाव और धृति
सत्तमा दयादि धर्म के दृश लक्षण सचारी है । यथा—

तृण की समान वन धाम राज त्याग करि पाल्यों पितु वचन जे जानत जनैया है । कहै पदमाकर त्रिपेकही को, वानो बीच मान्यो नत वीर धीर प्रीरज नरैया है ॥ सुम्भृति पुराण वेद आगम कछो जो पर आचरत सार्द शुद्ध करम करैया है । मोहमति मटर पुरन्दर मही कं प्रत्य धर्म धुरन्धर हमारो रघुरैया है ॥

तु० रा०—शिखि दधीच बलि जो कछु भाषा ।

तन धन तज्यउ वचन प्रणा रारा ॥

प्रमवीर के अन्तर्गत ही एक भेद 'त्यागवीर' भी है । यथा—
राजियजोचन राम चले तजि वाप को राज बटाउ की नाई ।

इति वीररम ।

(६) भयानक रस ।

जाको बायीं भाय भय, बड़े भयानक जान ।

दृश्य भयकर गजब कछु, ते विभाव उर आन ॥

रुम्पादिक अनुभाव तहँ, सचारी मोहादि ।

काल देव कोयलां परण, सुभयानक रसयादि ॥

भा०—भय की स्थिरता (पूर्ण पुष्टता) को भयानक रस कहते हैं । भयकर दृश्य विभाव है और कम्प-इसका अनुभाव है, इसी प्रकार मोहादि सचारी हैं । इसका काल देवता और कृष्ण वर्ण है ।

ब्रह्मन बटोरि वारि वारि तेल तमीचर खोरि खोरि धार आइ वाप्रत तगूर है । तैसो कवि कोतुकी डेगत ढीलों-गात कै के जात कै अघात सदै जीमे कहे कूर है ॥ बाल किलकारी कै के तागी दे दे गारी देत पात्रे लागे वाजत निसान ढोल तर है ।-वाजधि बदन लागी टार टार दीन्ही आगी विंध्य जी डेवारि मेधा काटि गत सूर है ॥

तु० रा०—डरपे गीत्र उचन खुनि काना ।

हाहाकार करत सुर भाग ।

(७) वीभत्स रस ।

थायी जासु गलानि है, सो वीभत्स जनाव ।
 पीव भेद मज्जा रुधिर, दुर्गंधादि विभाव ॥
 नाक मूँदिवो कंप तन, गोम उठव अनुभाव ।
 मोह अमूया मूरछा, ये संचारी भाव ॥
 महाकाल सुर नील रँग, सो विभत्स रस जानि ।
 ताको कहत उदाहरण, रस ग्रथनि उर आनि ॥

भा०—गलानि की स्थिरता (पूर्ण पुष्टता) को वीभत्स रस कहते हैं । पीव भेद, मज्जा (हड्डियों के भीतर का मेद) रक्तदिको की दुर्गंध विभाव है और तन कम्प रोमांच आदि अनुभाव हैं; इसी प्रकार मोह मूर्छा संचारी हैं इसका महाकाल देव और नील वर्ण है । यथा—

वैठिवे की उठवे की चलिवे की बोलिवे की जानत न एकौ चाल
 आये जग ढाँचे में । देखिवे मैं मानुष की आकृति दिखाई परे पर नर
 पशु औ परिन्द हैं सु जाचे में ॥ ग्वाल कवि जानी है विरचि तुच्छ
 को डारै और ठौर लागि ख्यालन के खाँचे में । कृकर ते शूकर ते रस
 तें उल्लुन ते खेंचि खेंचि जीव डारे मानुष के साचे में ॥

काली महाकाल के समान है विशाल हेरि पकरि निशाचर
 पट्ट पट्ट पटकत । नैन विकराल लाल रसना दशन दाँड भरि भरि ख
 मास गट्ट गट्ट गटकत है ॥ लोथनि पै लोथ रड मुन्ड ते विहीन के
 उद्धरि उद्धरि भूम चट्ट चट्ट चटकत । जोगिनी लवीस के हवीस ख
 पूरे होत खप्पर में खून भरि घट्ट घट्ट घटकत ॥

पढत मत्र अरु यत्र अत्र लीलत श्मि जुगिति ।

मनहु गिलत मद मत्त गरुड तिय अरुण उरगिति ॥

हरवरात हरपात प्रथम परसत पल पगुन ।

जहँ प्रताप जिति जग रग अंग अंग उमगत ॥

जहँ पदमाकर उतपत्ति अति रन रकतन नहिय बहत ।

घरल चकित चित्त चरधीन चुभि चकचकाइ चडी रहत ॥

तु० रा०—मज्जाहिं भूत पिशाच बंताला ।

श्रॉणित सर कादर भय कारी ॥

(८) अद्भुत रस ।

जाको थायी आचरज, सो अद्भुत रस गाव ।
 असभवित जेते चरित, तिनको लेखत विभाव ॥
 बचन विचल बोलनि कॅपनि, रोम उठनि अनुभाव ।
 वितरक शका मोह ये, तहँ संचारी भाव ॥
 जासु देवता चतुर मुख, रंग बखानत पीत ।
 सो अद्भुत रस जानिये, सरल रसन को पीत ॥

भा०—आश्चर्य की पूर्ण स्थिरता को अद्भुत रस कहते हैं अर्न्त-
 पित वस्तु, चरित्र तथा वार्ता आलम्बन है गुणों की विचित्रता व महिमा
 उद्दीपन, इसी प्रकार वाक्यों की विचलता कपना तथा रोम उठना
 अनुभाव और वितरक सदेहादि संचारी हैं । ब्रह्मा इन्के देवता हैं और
 पीत वर्ण है । यथा—

सात दिन सात राति करि उतपात महा मारत भुकोरैं तरु
 तोरे दीह दुख में । कहैं पदमाकर करी त्यो धूम धारन हू पते पै न कान्ह
 हू आयो रोम रस में ॥ छारि द्विगुनी के ज्ञेन पेसो गिरि द्वाइ राख्यो
 ताके तरे गाय गोप गोपी खेर सुख में । देखि देखि मेघन की सेन अकु-
 तानी रहो सिन्धु में न पानी अरु पानी इन्द्रमुख में ॥

मुरली बजाइ तान गाइ मुसक्याइ मद् लटकि लटकि माई नृत्य
 र निरत है । कहैं पदमाकर गोविन्द के उक्ताइ आहि विप को प्रवाह प्रति
 मुख हँ भिरत है ॥ पेसो फैल परत फुसकरतही में मनो'तारन को शृन्द
 कृतकारन गिरत है । कांप करि जौलों एक फन फुसकारे काली तौलों
 नमाली सोऊ फल पै फिरत है ॥

तु० रा०—दिखरायो मातहि निज, अद्भुत रूप अखड ।

रोम रोम प्रति राजहीं, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥

सती दीख कौतुक मगु जाता ।

(७) वीभत्स रस ।

थायी जासु गलानि हैं, सो वीभत्स जनाव ।
 पीव भेद मज्जा रुधिर, दुर्गधादि विभाव ॥
 नाक मूदिवो कंप तन, रोम उठव अनुभाव ।
 मोह अमूया मूरछा, ये संचारी भाव ॥
 महाकाल सुर नील रंग, सो विभत्स रस जानि ।
 ताको कहत उदाहरण, रस ग्रंथनि उर आनि ॥

भा०—गलानि की स्थिरता (पूर्ण पुष्टता) को वीभत्स रस कहते हैं । पीव भेद, मज्जा (हृदियों के भीतर का मेद) रक्तादिको की दुर्गधा विभाव है और तन कम्प रोमांच आदि अनुभाव हैं, इसी प्रकार मोह मूर्छा संचारी है इसका महाकाल देव और नील वर्ण है । यथा—

वैष्टिबे की उठवे की चलिवे की बोलिवे की जानत न एको चाल
 आये जग द्वचे मे । देखिवे में मानुष की आकृति दिखाई परे पर र
 पशु औ परिन्द हैं सु जाचे मे ॥ ग्वाल कवि जानी है विरचि तुच्छ अनु
 को डारे और ठौर जगि खयालन के खांचे मे । कुरुर ते शूकर तें रसम
 तें उल्लुन तें खैंचि खैंचि जीव डारे मानुष के साचे मे ॥

काली महाकाल के समान है विशाल हेरि पकरि निशाचरल
 पट्ट पट्ट पट्टकत । नैन विकराल लाल रसना दशन दांड भरि भरि खण
 मास गट्ट गट्ट गट्टकत है ॥ लोथनि पै लोथ रड मुन्ड ते विहीन केते
 उड्डरि उड्डरि भूम चट्ट चट्ट चट्टकत । जोगिनी खवीस के हवीस खू
 पूरे होत खण्पर में खून भरि घट्ट घट्ट घट्टकत ॥

पढत मत्र अरु यत्र अत्र लीलत इमि जुगिनि ।

मनहु गिलत मद मत्त गरुड तिय अरुण उरगिनि ॥

हरवरात हरपात प्रथम परसत पल पगुन ।

जहँ प्रताप जिति जग रग अंग अग उमगत ॥

जहँ पद्माकर उतपत्ति अति रन रकतन नहिय बहत ।

चख चकित चित्त चरधीन जुभि चकचकाइ चंडी रहत ॥

तु० रा०—मज्जाहिं भूत पिशाच वैताला ।

श्रोणित सर कादर भय कारी ॥

(=) अद्भुत रस ।

जाको थायी आचरज, सो अद्भुत रस गाव ।
 असभवित जेते चरित, तिनको लखत विभाव ॥
 वचन विचल धोलनि रूपनि, रोम उठनि अनुभाव ।
 पितरु शका मोह ये, तहँ संचारी भाव ॥
 जासु देवता चतुर मुख, रग उखानत पीत ।
 सो अद्भुत रस जानिये, सकल रसन को मीत ॥

भा०—आश्चर्य की पूर्ण स्थिरता को अद्भुत रस कहते हैं अमंभ-
 वित वस्तु, चरित्र तथा चार्ता आलम्बन है गुणो की विचित्रता व महिमा
 उद्दीपन, इसी प्रकार चाक्यो की विचलता कपना तथा रोम उठना
 अनुभाव और पितरु सदेहादि सचारी है । ब्रह्मा इसके देवता है और
 पीत वर्ण है । यथा—

सात दिन सात राति करि उतपात महा मार्त भुकोरें त
 तोरें दीह दुख में । कहैं पदमाकर करी त्यो ध्रम धारन हू एते पै न.कान
 कहू आर्यो रोप रख में ॥ छोरि त्रिगुनी के त्रन ऐसो गिरि द्वाइ राख्यं
 ताके तरे गाय गोप गोपी खरे मुख में । देखि देखि मेघन को सेन अकु
 लानी रह्यो विन्धु में न पानी अरु पानी इन्द्रमुख में ॥

मुरली बजाइ तान गाइ मुंसक्याइ मद तटकि लटकि माई नृत
 में निरत है । कहैं पदमाकर गोविंद के उक्ताह अहि विष को प्रवाह प्रति
 मुख है भिरत है ॥ ऐसो फैल परत फुसकरतही में मनो तारन का धुन्द
 फूतकारन गिरत है । कोप करि जौलों एक फन फुरुकावे काली तौलो
 धनमाली सौंऊ फन पौंफिरत है ॥

तु० रा०—दिखगयो मातहिं निज, अद्भुत रूप अखड ।
 रोम रोम प्रति राजहीं, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड ॥
 सती दीख कौतुक मगु जाता ।

(६) शांतरस ।

सुरस शान निर्वेद है, जाको थायी भाव ।
 सत संगति गुरु तपोवन, मृतक समान विभाव ॥
 प्रथम रुमांचादिक तहां, भापत कवि अनुभाव ।
 धृति मति हरपादिक कहे, शुभ संचारीभाव ॥
 शुद्ध शुक्ल रंग देवता, नारायण है जान ।
 ताको कहत उदाहरण, सुनहु सुमति दे कान ॥

भा०-निर्वेद (वैराग्य) की स्थिरता को शांतरस कहते हैं, संतसंगति और गुरु इसके आलम्बन तथा तपोवन और मृतक आदि उद्दीपन विभाव हैं। इसी प्रकार रोमांच अनुभाव धृति (वैर्य) और मति (सुबुद्धि) आदि संचारीभाव हैं। इसका देवता नारायण और राश्वेत है। यथा—

मानुष हो तो वही रसखान बसौ ब्रज गोकुल गोप गुवारन ।
 जो पशु हो तो कहा बस मेरो चरो नित नट की धेनु मँभारन ॥
 पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि कुत्र पुरट्टर कारन ।
 जो खग हों तो बसेरो करौ बहि कालिन्दी कूल कदव की डारन ॥
 प्रभु सत्य करी प्रह्लाद गिरा प्रगटे नर केहरि खम्भ महा ।
 भयराज अस्यो गजराज कृपा ततकाल विलम्ब किये न तहां ॥
 सुर साखी है राखी है पाडु बधु पट लुटत काटिक भूप जहा ।
 तुलसी भल्लु सोच विमोचन को जन को प्रण राम न राख्यो कहा ॥
 जब पच मिलै जेहि देह करी करनी लघु या धरणीधर की ।
 जनकी कह्यो करिहै न समहार जो सार करै सचराचर की ॥
 तुलसी कह्यो राम समान को ध्यान है सेवकि जासु रमाधर की ।
 जग में गति जाहि जगत्पति की परवाहि है ताहि कहा नर की ॥
 सो जननी सो पिता सोइ भ्रात सो भामिनि सो सुन सो हित मेरो ।
 सोइ सगो सो सरा सोइ सेवक सो गुरु सो सुर साहब सेरो ॥
 सो तुलसी प्रिय प्राण समान कहा लो वनाइ कहा बहुतेरो ।
 जो तजि देह को नेह को नेह सनेह सो राम को होइ सवेरो ॥

तिन तैं खर शूकर स्वान भूले जडता वश ते न कहै कछुचै ।
 तुलसी जेहि राम सो नेह नहीं सो सही पशु प्रद्व पिस्तानन छे ॥
 जननी कत भार मुई दश यास मई किन वारु गई किनच्यै ।
 जरि जाउ सो जीवन जानकि नाथ रहै जग में तुम्हगे विन है ॥
 आगम वेद पुराण बरानत मारग कोटिन जाहि न जाने ।
 जे मुनि ते पुनि आपुहि आप को ईश कहावत सिद्ध सयाने ॥
 धर्म सबै कलिकाल ग्रसे जप जोग विराम लै जीउ पराने ।
 को करि शोच मरै तुलसी एम जानकि नाथ के हाथ विकाने ॥
 बन पितान रवि शशि दिया, फल भख सलिल प्रवाह ।
 अवनि सेज पखा पवन, अष न कछु परवाह ॥
 तु० रा० परिहरि सकल भरोस, राम भजहि ते चतुर नर ।

इन प्रधान नवरत्नों के अतिरिक्त नाटकादि में पाच रस और पाये जाते हैं जिनके लक्षण नामही से ज्ञात होते हैं, इनको उपरस भी कह सकते हैं, उनके मन्त्रित उदाहरण नीचे लिखते हैं ।

(१) वत्सल ।

- १ मेरे प्राण नाथ सुते दोउ ।
- २ भैया कहहु कुशल छउ वारे ।
- ३ बार बार मुख चुम्बति माता ।

(२) संख्य ।

- करिहैं विधि भोसन ये प्रीती ।
 सखा नीति तुम नाक विचारी ।
 सुनत सुदामा मीत, टाढे हैं निज पार अथ ।
 दौरे श्याम सप्रीत, द्वादि राज के फाज मव ॥

(३) दास्य ।

- १ हम सेवक ह्यामी मियनाह ।
- २ चरना कमल चापन विधि नाना ।

विदूषक ।

सोइ 'विदूषक' रचि क्रिया, दम्पति करे निहाल ।

'चित्र' कोक दिय लाल कहँ, त्यों सारस कर बाल ॥ यथा-

कटि हलाय हलनाय कछु, अद्भुत ख्याल बनाय ।

अस को जाहि न फाग मे, परगट दियो हँसाय ॥

सखी उर्गन ।

सो सखि राखहि नासु सों, दम्पति कछु न दुराय ।

मिलो लाल सों जो लली, तो हौं देहुँ-सजाय ॥

सखी उन खियों को कहते हैं, जिनसे नायिका नायक कुछ भेद नहीं छिपाते ।

सखी भेद ।

वचन चातुरी सों करे, जे सखिया निज काज ।

तिन कहँ चार प्रकार की, बरणत है कविराज ॥

प्रथम कही हितकारिनी, दुतिय सुव्यंग्य विदग्ध ।

'अन्तरंग' बहिरंगिनी, तृतीय चतुर्थ सुलब्ध ॥

(१) हितकारिणी ।

'हितकारिनि' स्वइ जो करत, छल तजि तिय के काम ।

निय आनन पै स्वैदँ लखि, क्रियो विजँन अभिराम ॥ यथा-

छनिक न छोडत सुन्दरी, सखी हितु को मग ।

सखी बढावत रहत त्यो सुन्दरि हिये उमंग ॥

(२) व्यंग्य विदग्धा ।

वचन व्यंग्य युत कहत जो, सो सखि 'वचन' विदग्ध ।

विन गुन मुकता माल अलि, कहां भई लुहि लब्ध ॥

(३) अन्तरगिणी सखी ।

अन्तरंगिनी की क्रिया, आन सकत, नहि जानि ।

ल्याइ कान्ह की चांसुगी, धरी सुन्दरी पनि ॥

(४) वहिरंगिणी ।

करै सखी वहिरंगिनी, खुले खजाने काय ।
जे प्रन नाहि निवाहती, अलि वे पापिनि वाम ॥

सखी कर्म ।

मंडन-शिखा सहित ये, उपालम्भ परिहास ।
चार कर्म सखियान के, कविजन किये प्रकास ॥

प्रथम कर्म मंडन

मंडन तियहि सिंगारियो, घरनहि बुद्धि अनूप ।
दीन्हों सुन्दरि को बना, अली मोहिनी रूप ॥ यथा—

सखी ब्रिया की देह में, सजे सिंगार अनेक ।
कजरारी अखियान में, भूलो काजर एक ॥
कहा करों जो आगुरिन, अनी घनी चुभि जाय ।
अनियारे चख लखि सखी, कजरा देत डराय ॥

मदनान्तर्गत नख शिख वर्णन ।

नखतें शिख लौं बरणिये, देवी दीपति देखि ।
शिख तें-नख लौं मानुपी, केशवदास विशेखि ॥

भा०—देवी और देवता को दृष्टि नख से शिख तक वर्णन की जाती है और नर व नारियों की शोभा शिख से नख पर्यन्त वर्णन की जाती है । विस्तार भय से नख शिख के कुछ थोड़ेही उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं—

पगतज—तुव पदतल मृदुता त्रितै कवि वर्णन सखुचाहि ।
मनते आवत जीभ लो, मति झाले परि जाहि ॥
पदजालिमा—लिखन चहो ममि वोरि जव, अरुणाई तुव पांय ।
तव लेखनि के गीश का, ईगुर रंग ह ज्ञ जाय ॥
पाव—तुव पद मम तन पदम को, कयो कोन विधि जाय ।
जिन गख्यो निज गीश पर, तुव पद को पदजाय ॥
शुल्फ—गोरि गोल अमोल सुठि, सुन्दर सहज सुदारु ।

- पिडुरी—प्यारी पिडुरी की टिपति, अम्बर मे न समाय ।
दीप शिखा फानूस लौ, न्यारी भक्तकत आय ॥
- जघा—शीश जघा धरि मौन गहि, खंडे रहें इक पाय ।
येतो तप कदली कियो, लह्यो न जघ सुभाय ॥
- कटि—सुनियत कटि सक्षम निपट, निकट न देखत नैन ।
देह मध्य यो जानिये, ज्यो रसना मे वैन ॥
- नाभी—उदर बीच मन जाय कै, बूढयो नाभी माहि ।
कूप सरोवर के परे, कोऊ निकसत नाहि ॥
- रोमराजी—लसति उदर रोमावली, अति विचित्र बारीक ।
खिची कनक की भूमि पर, मृग मद की जनु लीक ॥
- त्रिवली—मो मन मज्जन को गयो, उदर रूप सर धाम ।
पन्यो सु त्रिवली भँवर तें, नाभि भँवर मे आय ॥
- यौवन—निरखि निरखि वा कुचन गति, चक्रित होत को नाहि ।
नारी उर तें निकसि कै, पैठत नर उर माहि ॥
भाजि गई लरकाई मनो लरिके करिके दुहु दुहुभि अंधि ॥
- भुज—गोरे गोरे दुति भरे, प्यारी के भुज मूल ।
दरसत मुख सरसत महा, वरसत मोद अतुल ॥
- करतल—बड़े कहावत आपु हो, गरुडे गोपीनाथ ।
तो बदि हो जो रासिहो, हाथन लखि मन हाथ ॥
- हथेली की लालिमा—दीप हथेरिन की टिपति, यो मिहरी के संग ।
लाली माधन साभत, ज्यो सूरज को रंग ॥
- आंगुरी वर्णन—सम्पकली करगहि कुवरि, हुती सखी को देति ।
वह बौरी धोखे परी, अंगुरी गहि गहि लेति ॥
- पीठ—जागि रूप सुवरन रची, विधि रचि पचि तुव पीठ ।
कीन्हो रखवागी, तहां, ब्याली वेणी दीठ ॥
- अधर—लिखन चहत रस लीन जव, तुव अधरन की बात ।
लेखनि की विधि जीह वैधि, मधुगई तें जात ॥
- दन्त—मोल लेन को जगत जिय, विधि जौहरी प्रवीन ।
राखे विद्रुम के उवा, ले द्विज मुकुत नवीन ॥
- रसना—नाथ सत स्वर सिधु की, वचन मुक्त की मीप ।
कै रसना सब रसन की, पौथी गिरा समीप ॥

मुखवास-अगर अतर की नगर में, कह रही नहि चाह ॥

बगर बगर सत्र डगर मे, तुव मुख वास प्रवाह ॥

हँसी-सहज महेलिन सो जु तिय, विहँसि विहँसि बतराति ।

शरद चन्द्र की चादनी, मन्द परति सी जाति ॥

कपोलतिल-गोरे मुख पर श्याम तिल, ताहि करा पर नाम ।

मानो चन्द्र विज्ञाय कै, बैठे शालिग राम ॥

बेसरिमोती-बेसरि मोती धन्य तुहि, को वृक्के कुल जाति ।

पियत रहत तिय अधर को, रमे निधरक दिनराति ॥

लोचन-अमी हलाहल मद भरे, सेत श्याम रतनार ।

जियत भरत भुकि भुकि परत, जिहि चितवत इक बार ॥

भृकुटी-भृकुटी कुटिल विलोकि यो, हात हिये अनुमान ।

बिन रोटा की ठै बरी, मानहुँ मेन कमान ॥

भालविदु-लाल सुवेदी भाल तकि, जग जानी यह रीति ।

तेरे शीश प्रतीत कै, बखी मीत की प्रीति ॥

नीको लसत ललाट पर, टीको जटित जगय ।

कविहि बढावत रवि मनो, शशि मडल मे आय ॥

मुखमडल-लजत चन्द्र आनन निरखि, खिजत सदा अर्गविट ।

मुख सुखमा किहि मिथि रहो, हिय जानत गोविड ॥

केश-सदकारे कारे सुभग, घुघुकारे सुकुमार ।

मतवारे रसिकन करत, नेही तिय तुव वार ॥

बेणी-हे निय बेणी रावरी, कारी नागिनि रूप ।

भेद इतो वाके उसें, यहि लखि लहर अनूप ॥

छप्पय ।

सर्गांग-रतन मयी नत्र नारि रना सम सुन्दर कहिये ।

घृवट हय भू धनुष अमिय विप मूद चप पश्ये ॥

मुख शशि प्रीवा कम्बु सदा सुखदा सुरतरसी ।

रम्भासी सुकुमारि चतुर अति धन्यन्तरसी ॥

गज गामिनि धनि लेपिये सुग्भी सम शुचि शीतल ।

विष्णु वृथा चारिधि मथ्यो तिय तन मे चोदह रतन ॥

शमनास-बैत रग ने मग्न लहत, नासा वाम तरग ।

अगदीसि-देह दमिती छवि गेह की, किहि विधि बरणी जाय ।
जा लखि चपला गगन तें, छिति पटकत सिर आय ॥

गति—चित चाह अबूझ कहैं कितने छवि छीनी गयन्दन की टटकी
कवि केते कहैं निज बुद्धि उटै यह लीनी मरालन की
मटकी ॥ द्विज देवजू ऐसे कुतर्कन में सब की मति योहि
फिरे भटकी । वह मन्द चले किन भोरी, भट्ट पग लावन
की अखिया अटकी ॥

सोरह शृंगार—प्रथम सकल शुचि मज्जन अमलवास जावक सुदेस
केशपास को सुधारिवो । अंग राग भूषण विविध मुख वास
राग कज्जल कलित कलित लोल लोचन निहारिवो ॥ बालनि
हंसनि चित चातुरी चलनि चारु-पल पल प्रति पतिव्रत प्रति
पारिवो । केशोदास सविलास कहत प्रवीनराय यहि विधि
सोरह सिंगारह सिंगारिवो ॥

शुचिता जील सनेह गति, चितवन बोलनि होंसि ।
कच गूथन श्रौवन्त शुभ, भाल तिलक सुख रासि ॥
भाल तिलक सुररास दगन अजन अति सोहैं ।
वीरी बदन सुदेस विवुक ममकन मन मोहैं ॥
या विधि मिहदी अंग राग भगवत मन रुचिता ।
ये सोरह सिंगार मुख्य तामें वर शुचिता ॥

वारह भूषण—नूपुर विद्धिया किंकिणी, नीवी बन्धन सोय ।
कर मुँदरी ककण बलय, बाजूवद भुज दोय ॥
बाजूवद भुज दोय कठ श्री दुलरी राजे ।
नासा बेसर सुभग श्रवण ताटक विराजे ॥
भगवत वेंदा भाल माग मोती गुह ऊपर ।
द्वादश भूषण अंग नित्य प्यारी पग नूपुर ॥

द्वितीय कर्म शिक्षा ।

सखि बिलास सिख देन को, शिक्षा कहैं कवि मोर ।
सुख जानि खोलै तू सखी, लैहै घेर चकोर ॥ यथा—

वहत लाज वृडत सुमन, भ्रमत नैन तिहि ठाव ।

नेह नदी की धार में, तू न दीजियो पाव ॥

चृताय क्रम उपालम्भ ।

उपालम्भ दम्पति विषय, सखि जु उरहनो देय ।

अबला पै बळ करत हौ, हैकर पुरुष अजेय ॥ यथा—

कौन भांति आये निरखि, तुम तिहि नन्दकिशोर ।

भरभराति भामिनि पगी, घनघराति घन घोर ॥

चतुर्थ कर्म परिहास ।

सोइ कृत्य परिहास तिय, जासों होय निहाल ।

पिय पगरी सखि सिर धरै, आइ सामुहे बाल ॥ यथा—

को तेरो यह सावरो, यों बूम्यो मखि आय ।

मुख तें कही न बात कछु, रही सुमुखि मुख नाय ॥

दूती ।

जतन कराहि सुविचार, जो तिय पिय संयोग हित ।

नाम कियो निरधार, तिहि को दूती सुकवि जन ॥

इक मृदु कछु मृदु दूसरी, कुपित तीमरी बैन ।

बोळहि यासों तीन विधि, क्रिय दूती प्रति ऐन ॥

एक उत्तमा दूसरी, दूती मध्यम होत ।

अथमा तीजी काज सों, वरणत कवि के गौत ॥

उत्तमा दूती ।

दूती वर पहित वचन कहि, दम्पति देय मिलाय ।

दामिनि घन सों मिलत अळि, तूपिय सों मिल जाय ॥ यथा

काल्हि कालिन्दी के निकट, निरखि आय हौ जाहि ।

आई खेलन फाग घट, तुमही मों चित चाहि ॥

मध्यमा दूती ।

मध्यम दूती हित अहित, कहत मिखाई बात ।

रूप चांदनी चार दिन, फेर अंधेरी रात ॥ यथा—

अधमा दूती । ॥ ८ ॥

अधमा दूती साधती, कुपित वचन कह काज ।
री चकोर मरिहै कहा ? जो न लये द्विजराज ॥

दूती कर्म ।

बिनती नुति निंदा विरह, अरु प्रबोध संयोग ।
इक इक दूती के कहे, -पट कारज कवि लोग ॥ १ ॥

उत्तमा विनय-विनय सोइ जहँ विनय किये, है दूती को काज ।

मन जिनको तुम हर चुकीं, सो ध्राये ब्रजराज ॥

मध्यमा विनय-जाहि वचायो मेह ते, करि गिरवर की छांहि ।

ताहि श्याम जिन जारियो, विरहानल भरि मांहि ॥

अधमा विनय-जो न मानहो लाल तो, फिर का परी बलाय ।

स्वइ भोजन रूखे कराहि, जिहि गोरस ढरकाय ॥

नुति (स्तुति)

अस्तुति सो अस्तुति किये, करै दूतिका काम ।

तो तन छवि आलि दामिनी, हरि तन सम धेनश्याम ॥

उत्तमा स्तुति-तिनके रूप अनूप की, किहि विधि कहिये वात ।

जिन मोहन छवि मन धरे, मन मोहो सो जात ॥

मध्यमा स्तुति-निज तन जल ग्रायो कहनि, करि समुद्र आगार ।

तिन को मन पावत नहीं, तुव तन पानिप पार ॥

अधमा स्तुति-कसकि कसकि प्रवृत्त कहा, कसकि मसकि अनुमान ।

खसकि जायगो ठंसकि यह, नेक ससकि सुन कान ॥

निंदा ।

निंदा सो दूती करत, सोई निंदा काम ।

गोरी भोरी बाल कहँ, कहँ चलांक तुम श्याम ॥

निंदा-आउ डेरहु जनि देखिके, फाग रची ब्रजवाल ।

को कमरी पै डारिहै ? केसर रंग नंदलाल ॥

मिलन चाहत यह रूपसो, राधाजू के साथ ॥
 अधमा निन्दा—कहा आपने रूप की, करत बडाई हाल ।
 तोहू ते अति आगरीं, नगर नागरी बाल ॥

विरह निवेदन ।

विरह कथन तिय पिय विरह, दूती कह समुझाय ।
 नेह नीर विन वाम वह, क्यों जीवे यदुराय ॥
 आपुस में हमको तुमको लखि जो मन आवत सो कहती है ।
 बाते चबाव भरी सुनिके रिस लागत पे चुप है रहती है ॥
 ये घग्हाई लुगाइ सवे निसि घोस नेघाज हमै दहती है ।
 प्रान पियारे तिहारे लिये सिगरे ब्रज को हँसिबो सहती है ॥
 उत्तमा—जब ते आई तडितलों, नीलाम्बर में कौंधि ।

तव ते हरि चकित भये, लगी चक्षुनि चकचौंधि ॥

मध्यमा—कहा कहां चाकौं दशा, जेव खग बोलत राति ।
 पीय सुनतिही जियति है, कहा सुनति मरि जाति ॥

अधमा—मोहि कह्यो कहिये उतै, वनमाली को पाय ।
 नवल बोलिसी बाल चा, दिन प्रति सूखी जाय ॥

प्रबोध ।

वह प्रबोध क्रिय बोध हो, दूती कृत निरधार ।

हे हरि हरे नवाइयो, बाल चम्प की डार ॥

उत्तमा प्रबोध—अव कीजे अनयास यह, बन्यो प्योत अनयास ।
 तेरे मीतर कन्त के, दोऊ अटा सुपास ॥

मध्यमा प्रबोध—हरि चिंता नहिं कीजिये, अपने मन में ल्याइ ।
 या होरी के खेल में, गोरी मिलि है आय ॥

अधमा प्रबोध—के गुमान गुण रूप के, तैं न छान गुन मान ।
 मनमोहन चित चढि रही, तोसों कित्ती न आन ॥

उत्तमा संघट्टन-गोरी और गुपाल को, हारी के मिस ल्याय ।
 विजन सांकरी खोरि में, दोऊ दिये मिलाय ॥
 मध्यमा संघट्टन-रमनी रमन् मिलाय यौ, दूती रहति बराय ।
 धन दामिनि को जोरि कै, ज्यौ समीर रहि जाय ॥
 अधमा संघट्टन-झल सो बल सो रावरे, किहु विधि ल्याइ मनाय ।
 मिलो बेगि चलि नतरु फिर, जाने मारि बलाय ॥

स्वयं दूतिका ।

स्वयं दूतिका दूतपन, करहि जु अपने काज ।
 मग दुर्गम कारी निशा, पथिक बसहु इत आज ॥ यथा-
 मोही सो किन भेट ले, जौलों मिले न वाम ।
 शीत भीत तेरो हियो, मेरो हियो हमाम ॥

अथ उद्दीपन विभावांतर्गत षट् ऋतु वर्णन ।

गर्मी वर्षा और शीत के क्रमानुसार प्रत्येक वर्ष के छे विभाग होते हैं जिन्हें ऋतु कहते हैं । यथा वारा महीने और पड़ऋतु—
 चैत्र विशाख वसतहि जानो, जेठ असाढ जु ग्रीषम मानो ।
 सावन भादो वरपा होई, क्वार कारतिक शरदहुँ सोई ॥
 अग्रहन पूस हिमन्त कर्हाजे, माघ फाल्गुन शिशिर गनीजे ।
 गर्मी बपा जाडो होई, चौ चो मास केर पुनि मोई ॥

- | | |
|--------------------|--------------------|
| (१) वसन्त (ऋतुराज) | मास चैत्र और वैशाख |
| (२) ग्रीषम (गर्मी) | जेठ और अषाढ |
| (३) वर्षा (पावस) | श्रावण और भाद्रपद |
| (४) शरद | आश्विन और कारतिक |
| (५) हेमन्त | मार्गशीर्ष और पौष |
| (६) शिशिर | माघ और फाल्गुन |

वसंत ऋतु ।

फूकि उठीं कोकिलान गूजि उठीं भौर भीर डोलि उठै सौरभ
 सरसायने । फूलि उठीं जतिकह लौंगन की लौनी लौनी सुमि

उठा डालेया कदम्ब सरसावने ॥ चटकि चकोर उठे कीर करि सोर उठे
 डरि उठीं सारिका विनोद उपजावने । चटकि गुलाब उठे लटकि सरोज
 पुज खटकि मराल रितुराज सुनि आपने ॥

अघनि ते, अम्बर ते, इमनि दिग्म्बर ते अपर अडम्बर ते सखि
 सरसो परै । कोकिला की कूरुन ते हियन की हूकन ते अतन भभूरुन
 ते, तन तरसो परै ॥ कहत किशोर कज पुजन ते कुजून ते मंजु अलि
 पुजन ते देखो दरसो परै । बसन ते वासन ते सुमन सुगासन ते वैहर
 ते वन ते बसन्त बरसा परै ॥

कुलन में केलि, में कद्वारन में कुजन में क्यारिन में कलित
 कलीन किलरुन है । कहे पद्माकर परागह में पोनुह में पातिन में
 पीकन पलासन पगन्त है ॥ डार में दिसान में दुनी में देस देसन में
 देखौ दीप दीपन में दीपति दिगन्त है । वीथिन में ब्रज में नवेलिन में
 वेलिन में वनन में वागन में वगन्यो वसन्त है ॥

मिलि माधवी आदिक फूल के व्याज विनोद लवा बरसायो करें ।
 रचि नाच लतागन तानि वितान सबै विधि चित्त चुरायो करें ॥
 द्विज देव जु देखि अनोखी प्रभा अलि चारन फोरति गायो करें ।
 चिरजीवो बसन्त सदा द्विज देव प्रसूनन की भरि लायो करें ॥

मंदमाती रसाले की डारन पै अदि आनंद मों यो विराजति है ।
 कुल जानकी कान करें न कहु मन हाथ परायहि पारति है ॥
 फाँऊ कैसे करै द्विज तूहि कहे नहि नेकौ दया उर धारति है ।
 अरि फैलिया कूरु करे जन की किरचै किरचै किये डारति है ॥

इहि मधु श्रुतु मे कौन के, बढत न मोद अनन्त ।

डरो ना अहीरन सो अंतर अवीरन सो चार जनी चार चार
 अोरन तें धावोरी । एक हाथ थोडों पिचकारी की अपार मार एक हाथ
 थोडा चोट आंखिन वचावोरी ॥ कवि सरदार आयो बडों खेलवार ताहि
 खेल को सवाँद अंग अंगन बंतावोरी । कीरति कुमारी कहै हेरि के
 कुमारि कोऊ हौरी गुनवारी बनवारी वांधि जावोरी ॥

एकै सग हाल नंदलाल औ गुलाल दोऊ दगन गये तें भरि
 आनद मदे नहीं । धोय धोय हारी पदमाकर तिहारो मोह अव तो उपाय
 एकौ चित्त में चढै नहीं ॥ कैसी करौ कहा जाऊ कासो कहौ कौन सुने
 कोऊ तो निकासौ जासों दरद बढै नहीं । ऐरी मेरी वीर जैसे तैसे इन
 आखिन तें कढ़िगो अवीर पै अहीर को कढै नहीं ॥

उतते कन्हाई लरिकाई सखा लीन्हें संग करि चतुराई कोलि होग
 की मचाई है । इत वृषभान की कुमारी सुकुमारी प्यारी आलीगन आली
 मे रसाली सी सुहाई है ॥ लालन गुलालन की लालन पै डारें मुठि
 चलै पिचकारी सुखकारी दुहुँ घाई है । केसर सुरगसाने नेह सरसाने
 डारै मानो वरसाने वरसाने भरि लाई है ॥

मेला मेल भोरिन की मूठिन की मेला मेल मेला रेल रग की
 उमग सरसत है । कहै पदमाकर गवैयन की पेल परी गैल गैल फैल
 फैल फाग परसत है ॥ धूम धधकोधनकी धधकी वजत तामें ऐसो अति
 ऊधम अनोखा दरसत है । ग्वाल पर ग्वाल तेहि ग्वाल पर नन्दलाल लाल
 नन्दलाल पै गुलाल वरसत है ॥

ऐसी न देखी सुनी सजनी धनि वाढति जाति वियोग की बाधा ।
 त्यो पदमाकर मोहन को तव तें कजहै न कळू पल आधा ॥
 लाल गुलाल घलाघलि में दग ठोकर दै गई रूप अगाधा ।
 कैगई कैगई चेटक सी मन लैगई लैगई लैगई राधा ॥

भाल पै लाल गुलाल गुलाल सो गेरि गरे गजरो अलबेलो ।
 यो धनि बानिक सो पदमाकर आये जु खेलन फाग तो खेलो ॥
 पै एक या छवि देखिने के लिये मो विनती, कै न भोरिन मेलो ॥
 रावरे, रग रंगी अतिवान, में ए बलवीर अवीर न मेलो ॥

रस भिजये दोऊ दुहुँन, तउ टिक रहे दुरेन ।

छवि सों छिरकत प्रेम रंग, भरि पिचकारी नैन ॥

ग्रीष्म ऋतु ।

जीवन को शास कर ज्वाला को प्रकास कर मोरही तें भास कर
 आत्ममान दायो है । धमक धमक धूप सूखत तलाय कूप पौन को न
 गान भान आगि में तचायो है ॥ तकि थकि रहे जकि सकल विहाल
 हाल ग्रीष्म अचर चर रचर सतायो है । मेरे जान काहू वृषभान जग
 मोचन का तीसरे त्रिलोचन को लोचन खुलायो है ॥

बेठि रही अति सधन वन, वैदि सदन मन मांह ।
 निरलि दुपहरी जेठ की छाहीं चाहत छाह ॥

पावस (वर्षा) ऋतु ।

चातक चिहुक मत मुखा कुहुक मत भिगुर भिहुक मत भेकी
 मन नाय मत । चकवा चिफार मत पपिहा पुकार मत धुन्द भर धार
 मत धार धहराय मत ॥ कृष्णलाल गाय मत पीर उपजाय मत बालम
 विदेस पाय मैन तन ताय मत । पौन फहराय मत चपला चवाय मत
 धाय मत धुरवा औ घने घहराय मत ॥

आई ऋतु पावस न आये प्राण प्यारे याते मेघन वरज आली
 गरजन लावैना । दादुर हटकि बकि बकि न फारे कान पिकन पटकि
 मोहि सवट सुनावैना ॥ विरह विधाते हौ तो ध्याकुल भई हो देव चपला
 अमकि चित चिनगी उड़ावैना । चातक न गाये मोर सोर न मचावै घन
 घुमड़ि न कावै जोली लाल, घर आवैना ॥

केधो वही देश जहु प्रीतम पियारे वसे घोर घटा नहि घुमि घुमि
 घहरावै है । कैथौ अमकत नहि चपला चहुँ घा- तहा कैथौना सुरेश कबौ
 धुन्द भर लावै है ॥ कैथौ काम कूटिल न न्यापत करैजे कैथो कोऊ नहीं
 मेघ औ मेलार राग गावै है । कैथौ लाल पावस की रात मे पपीहा पापी
 वार धार पीपी कर कूकना सुनावै है ॥

कर कागद लेके प्रियोगिनि नारि लिखै क्षमि प्रीतम को पतिया ।
 यहि पावस मे परदेस छुबे बलिदारि तुम्हारी सिजा छतिया ॥
 सखिया पिय मग हिंदोरे बढी कहै गीत मे जग्व भरी बतिया ।
 अतिकारी टरावनी सापिनसी माहि साजत सावन को रतिया ॥

ता समैं मोहन के दृग दृरिति आतुर रूप की भीख यों पावै ।
पौन मया करि घूघट टार दिया करि दामिनी दीप दिखावै ॥

पावस घन अधियार में, रहो भेद नहिं आन ।

राति यांस जान्यो परे, लखि चकई चक्रवान ॥

अथ पावस ऋतु अन्तर्गत ।

हिंडोरा ।

मोरन को गुजियो विहार वन कुजन में मजुल मलारन को
गावनो लगत है । कहैं पदमाकर गुमानहु में मानहु में प्राणहुतें प्यारो मन
भावनो लगत है ॥ मोरन को सार घन, घोर, चहुँ, औरन, हिंडोरन को
चुन्द छवि, द्यानो लगत है । नेह सरसावन में, मेह वरसावन में, सावन
में झूलियो सुहावन लगत है ॥

सावन तीज सुहावन को सजि, सोहैं दुकूल सबै सुख साधा ।

त्यो पदमाकर देखे वनै कहते न वनै अनुराग अगाधा ॥

प्रेम के हेम हिंडोरन में सरस वरसैं रम्य रग अगाधा ।

राधिका के हिय झूलत सावरो सावरे के हिय झूलत राधा ॥

हेरि हिंडारे गगन त, परी परीसो दूटि ।

धरी धाय प्रिय वीचही, करी खरी, गस लूटि ॥

शरद ऋतु ।

भूयो गति मति चन्द्रखलत न एक पैड प्यारे मुरलीधर मधुर कल
गाम की । फूली कुसुमावलि विविध नव कुजन, में सौरभ सुगंधताई
जात ना बखान की ॥ बाजत, मृदग ताल भाभ मुरचग, वीन, उठत संगीत
जहा अति गति तान की । आज रस रास में अनूप रूप दोऊ नवें नन्द
लाल लाडिलो किशोरी वृषभान को ॥

खनका चुगीन की त्यो ठनक मृदगन की रनुक कुनुक सुर नूपुर
के जाल को । कहैं पदमाकर, त्यो वासुरी की धुनि मिलि रहां वैधि
रास सनाको एक छाल को ॥ देखत बनत पै न कहत बनैरी कछु विविध
त्यो हुलास यह ख्याल को । चन्द्र छवि रास चांदनी को परगास
को मन्द हाम रासमडल गोपाल को ॥

तालन पे ताल पे तमालन पे मालन पे वृन्दावन वीथिन बहार
 ली बटपै । कहैं पदमाकर अखण्ड रास मण्डल पै मण्डित उमण्ड महा
 ललित्दी के लटपै ॥ छितिपर छानपर छानत छतानपर ललित लतानपर
 डली के लटपै । आई भले छाई यह शरद चुन्हाई जिहि पाई छवि
 अछी कन्हाई के मुकुटपै ॥

पोडस हजार बाल पोडस शृंगार साजि पोडस वरस वैस मुदित
 हार है । बाहुन सौं बाहु जोरि मोरि मोरि अंगन सौं कीन्हों महा मडल
 खडल अपार है ॥ कहैं नदराम तैसे तार औ सितार मिलि चुरी खनकार
 र पञ्चम उचार है । झूलत दिशान विदिशान आसमान ह लौं छम छम
 ई घुंघरू फी भनकार है ॥

सीत समै परदेस को पीय, पयान सुन्यो बेट रोवन लागी ।
 या रितु मे हरि क्योह रहै घर देवता पूजि मनावन लागी ॥
 और उपाव तन्यो न कछु तव माजि के वीन बजावन लागी ।
 प्यारी प्रवीण भरे स्वर मेघ मलोरि अलापि के गावन लागी ॥

हेमन्त ऋतु ।

करसैं तुसार वहे सीतल समीर नीर कम्पमान उर क्योह धीर
 धरत है । राति न सिराति सरसाति व्यथा विरह की मदन अराति
 गोर जावन करत है ॥ सेनापति स्याम हौ अधीन हो तिहारी सोह मिले
 वेन मिले सीत पार न सरत है । और की कहा है सविताह सीत रितु
 गानि सीत को सतायो धन रासि मे रहत है ॥

सुन्दर मदिर अन्दर में बहु वन्दनवार बितान अडोलै ।
 है परदा मखतूलन के तिहि मूल विछी गिलमे गुल गोलै ॥
 छल्लुभ दीपत दीपत है मनि त्यों सुक सारिका के गन बोलै ।
 परी हिमन्त मे राधिका श्याम करै बहु रग उमग कलोलै ॥

आघत जात न जानियत, तेजहि तजि सियराज ।

घरहि जमाई लो प्रस्यो, खस्यो प्रस दिनमान, ॥

कसाला तिन्हें जिनके अर्धीन पेटे उदित मसाला हैं । ताक तुक ताल
हैं विनोद के रसाला हैं सुवाला हैं दुशालाहें विशाला चित्रसाला हैं ॥

लगत सुभग शीतल किरण, निशि सुख दिन अवगाहि ।
माघ शशि भ्रम सूर त्यों, रहति चकोरी चाहि ॥

पवन ।

पवन तीन विधि जानिये, शीतल मंद सुगंध ।

पवन तीन प्रकार की होती हैं, अर्थात् (१) शीतल, (२) मंद

(३) सुगंध ।

शीतल ।

अम्बु परसिकर वहति जो, सोई शीतल पौन ।

जल स्पर्श करती हुई जो पवन चलती है उसे शीतल पवन
कहते हैं ।

मन्द ।

वहै रुकै पुनि वहि चळै, सो है मन्द समीर ।

ठहर ठहर कर धीमी गति से चलने वाली पवन को मन्द पवन
कहते हैं ।

सुगन्ध ।

कुसुम परसिकै चळति जो, तौन सुगन्धित पौन ।

वन ।

स्वाभाविक बहु वृक्षयुत, वन भाषत कवि वृन्द ।

उपवन ।

कृत्रिम वन उपवन अहै, जाहि कहत आराम ।

चन्द्र ।

शशि उपमा जल तिय वदन, तउ विरहिनि दुख देत ।

चांदनी, पुष्प, पराग ।

चांदनि पुष्प पराग में, उद्दीपन परतच्छ ।

अनुभाव (कार्य) ।

जिनही तें रति भाव को, चित में अनुभव होत ।
ते अनुभाव सिंगार के, वरणत हैं कवि गीत ॥
सात्विकभाव स्वभाव धृत, आनंद अंग विकास ।
इनहीं तें रतिभाव को, परकट होत विलास ॥

भा०—जिन क्रियाओं से रसास्वाद का अनुभव अर्थात् अनुमान हो उनको अनुभाव कहते हैं । इसके तीन भेद हैं, १ सात्विक, २ कायिक ३ मानसिक ।

१ सात्विकअनुभाव ।

सहजहि अंग विकार कहें, सात्विक भाव बखान ।
ताके पुनि नव भेद गुनि, बरणत है मतिमान ॥

भा०—शरीर के सहज अंग विकार को सात्विक भाव कहते हैं, इनके ६ भेद ये हैं ।

स्तम्भ स्वेद रोमांच कहि, बहुरि कहत स्वर भंग ।
कम्प वराणि वैवर्ण्य पुनि, आंशु प्रलय प्रसंग ॥
अन्तरगत अनुभाव में, आठहु सात्विक भाव ।
जृम्भा नवम बखानहीं, कोऊ कवि सतभाव ॥

भा०—१ स्तम्भ २ स्वेद ३ रोमांच ४ स्वरभंग ५ कम्प ६ विवर्ण्य ७ अश्रु ८ प्रलय और ९ जृम्भा ।

(स्तम्भ)

हरप लाज भय आदि तें, अङ्ग थकित अस्तम्भ ।
पियहिं निरखि तिय थकि रही, भूलि मान अरु दम्भा ॥

भा०—हर्ष, लाज, भय, श्रम और व्याधि इत्यादि कारणों से सम्पूर्ण अवयवों (अंगों) की गति के अयरोध (थकित) हो जाने को स्तम्भ कहते हैं । यथा—

जैसा जैसी भई तब तब तें सकुच गई मिट्टी कलकलनि कैसी

पैसों नेह को उघरिवो ॥ चित्र कैसे लिखि-दोउ ठाढ़े रहे "काशीराम"
नहीं परवाह लोग लाख 'करो' लरिवो । वसी को वज्रवो नट नागर
विसरि गयो, नागरी विसरि गई गागरी को भरिवो ॥

॥ तु० रा०—रहि जनु कुँवरि चित्र अघरेखी ।

भये विलोचन चारु अचचल ॥

(स्वेद)

रोप लाज हर्षादि तें, अंग सलिल स्वइ स्वेद ।

श्रम सीकर मुख कमल में, लाज हर्ष संभेद ॥

भा०—रोप अर्थात् क्रोध, लाज, भय, हर्षादि से अंग प्रत्यंग में जल
(पसीना) प्रकाशित (झलक) होने को स्वेद कहते हैं । (बोझ उठाने वा
लादने से जो पसीना निकले उसमें सम्बन्ध नहीं) ॥

तु० रा०—श्रम विदु मुरा राजीव लोचन अरुण तन थोनित कनी ।

(रोमांच)

शीत भीति हर्षादि तें, रोमांचित है जात ।

उठे अँकुरे प्रेम के, पुलकित गात अन्हात ॥

भा०—शीत, भय और हर्षादि के कारण शरीर में रोम उठ आने
को रोमांच कहते हैं । यथा—

कैधौ डरी तू खरी जल जन्तु तें कै अंग भार सिवार भयो है ।

कै नख तें सिख लो पदमाकर जाहिरै भार अँगार भयो है ॥

कैधौ कढ़ तोहिं शीत विकार है ताहि को या उदगार भयो है ।

कैधौ सुवारि विहारहि में तनु तेरो कदम्ब को हार भयो है ॥

पुलकितगात अन्हात यो, अरी खरी छवि देत ।

उठे अँकुरे प्रेम के, मनहुँ हेम के खेत ॥

तु० रा०—श्यामलगात रोम भये ठाढ़े ।

(स्वरभंग)

हरष भीति मद क्रोध ते, जहां होत स्वर भंग ।

सूधे वचन न कहि सके, कामिनि पुलकित अंग ॥

। भा०—हर्ष, भय, मद आर क्रोधादं से स्वाभाविक वास्य ध्वानिका
पर्यय होमा (बदल जाना) स्वरभग कहलाता है । यथा—

तु० रा०—पुलकित तनु मुग्ध आव न वचना ।

कप (वैषथु)

हरष, कोप, भ्रम, भय, सहित, जहँ कंपित सब गात ।

अब बचिहँ किमि प्राण ये, विरह अनल तें तात ॥

भा०—हर्ष, क्रोध, भ्रम, भय आदि के कारण अकस्मात् शरीर-
के चलायमान (थरथराने) को कप कहने है । यथा—

तु० रा०—थर थर कपहिं पुर नर नारी ।

(वैवर्ण्य)

भय क्रोधादिक तें जहा, हो विवर्ण्य गति चैन ।

श्रीहत भूपति भे सबै, धनुष भग लखि नैन ॥

भा०—मोह, क्रोध और भय आदि से शरीर की कति के परि-
को वैवर्ण्य कहते है । यथा—

कहिन, सकत कलु, लाज तें, अकथ आपनी वात ।

ज्यों ज्यों निशि निपरात है, त्यों त्यों तिय पिय रात ॥

तु० रा०—श्रीहत भये भूप वनु दूटे ।

(अश्रु)

हर्ष शोक भय आदि तें, अश्रु चलत ठहरैन ।

तासु दशा देखी सखिन, पुलकगात् जल नैन ॥

भा०—हर्ष, क्रोध, शोक, भयादि के कारण नेत्रों से जल प्रवाह
अश्रु कहते है ।

(प्रलय)

तन मन की न सँभार जहँ, सोई प्रलय कटात ।

कैकेई के वचन सुनि, शिथिल भूप के गात ॥

भा०—किन्ही विषय या विली वस्तु में तन्मय होकर तन मन फो

कैसी भई है दसा इनकी ? तुमहू तौ कहौ सब में मरती हो ।
मोहन तौ मथुरा कौ गये भट्ट ? कोन उपाय करे गहती हो ।
गोकुल ध्यान धुनी में धँसो अब ताहि कहौ किन क्या लकी
राधे कहे कछु उतर देति न कान्ह कहे कहे का कहती हो ।
तु० रा०—केहरि कटि पट पीतधर, सुखमा शील निधान ।

देखि भानुकुल भूषणहि, विसरा सखिन अपान ॥

॥ ७७ ॥ व्याकुल राउ शिथिल सब गाता ॥

(जृम्भा)

पिय वियोग सम्मोह में, आलस (जृम्भा) आय ।
लरिका श्रमित उनींदवस, शयन करावहु जाय ॥

भा०—पिय विज्ञोह (वियोग) वा मोह आलस्य के कारण
क्षण में वदन उभारने को जृम्भा कहते हैं । यथा—

दरदर दौरति सदन दुति, सम सुगन्ध सरसाति ।

लखत क्यों न आलस भरी, परी तिया मुरभाति ॥

२ कायिकानुभाव ।

तन की कृत्रिम चेष्टा, सो कायिक अनुभाव ।
पिय को केश बताय तिय, इंगित किय निसि आर ॥

भा०—आख, भौह, हाथ आदि अंगों द्वारा जो चेष्टाएँ की
हैं, उन्हें कायिक अनुभाव कहते हैं । यथा—नायक को देखकर
में बैठी हुई नायिका ने अपने काले केश दिखलाकर यह श्राप
कि रात को आव-इसी को बोधक क्रिया कहते हैं । यथा—

श्याम सैन तिय नेन तकि, निसरि भीर तें प्राय ।

अधर आंगुली धरि चली, चित की चाह विताय ॥

अस कहि पुनि चितये तिति आरा ।

३ मानसिकानुभाव ।

मन संभव मोदादि कहँ, कहिय मानसिक भाव ।

छळा छीनि तोन्यो हरा, तऊ मिळन को चाव ॥

भा०—मन एत प्रमोदादिक अनुभाव का मानसिक अनुभाव
कहते हैं । यथा—प्रीति करते समय धीरुपण ले नायिका की प्रियता

झला झीम लिया ओर-मोतियों का हार भी तोड डाला तोभी उसके
द्वय मे मिलने की उत्कठा वनी ही है ।

गोरस को लूटिवो न डोरिवो, कुरा को गनै दूटिवो गनै न कह
तेतिन के माल को । कहै पदमाकर गुवालिन गुनीली हेरि हरखै हैसेयो
हरैं झूठे झूठे ख्याल को ॥ हां करति ना करति नेह की निशा करति
जाकरी बली में रग राखति रसाल को । दीवो दधि दान को मुकैसे
जाहि भावत है जाहि मन भायो झार झगरो गुपाल को ॥

शब्द पूर्णिमा यमुन तट, राम रच्यो नन्दलाल ।

मोद अलोकिक की छटा, इक जानत ब्रजवाल ॥

देखि सिया शोभा सुख पावा ॥

कायिक तथा मासिक अनुभावान्तर्गत ।

द्वादशहाव ।-

अनुभावहि में जानिये, लीलादिक जे हाव ।

ते संयोग शृंगार में, वरणाहि सब कवि राय ॥

भगट स्वभाव तियान के, निज सिंगार के काज ।

हाव जानिये ते सबै, यों भापत कविराज ॥

लीला विह्वन विलास पुनि, ललित विच्छिती जान ।

विभ्रप किल किंचित बहुरि, हाव कुदमित मान ॥

विन्वोकस मोटाइनहुं, हे दस हाव प्रसिद्ध ।

हेला बोधक हावहु, कहत जु है रस सिद्ध ॥

भाषाभूषण में दस हाव वर्णन किये हैं, अन्य ग्रन्थों में दो हाव
ओर मिलते हैं । यथा—भाषाभूषण

प्रिय प्यारी रति सुख करै; लीलाहाव सुजानि ।

बोलि सकै नहिं लाजत, विह्वत हाव बखानि ॥

चितवनि बोलनि चलनि में, रस की रीति पिछास ।

विच्छिंति काहू बेर में, भूषण अल्प सुहाय ।
 रस सों भूषण भूलिकै, पहिरे विभ्रम हाय ॥
 क्रोध हर्ष अभिजाप भय, किल किंचित्त में होय ।
 प्रगट करै दुख सुख समै, हाव कुट्टमित सोय ॥
 प्रगट करै रिस पीय सों, बात न भावै कान ।
 आये आदर ना करै, धरि विव्वोक गुमान ॥
 पिय की बातन में चलै, तिय अंगराइ जंभाय ।
 मोटाइत सो जानिये, कहँ महा कविराय ॥
 हेलाहू सभोग में, जहँ हो विविध विलास ।
 बोधक इंगित फोड कहँ, सो कायिक में भास ॥

अब इनके लक्षण और उदाहरण पृथक पृथक लिखते हैं—

(१) लीलाहाव ।

लीला भूषण बसन सजि, इक के एक विसाळ ।

कुष्ण बने श्री राधिका, राधे श्री नंदलाल ॥ यथा—

ये इत घृघट घालि चलै उत वाजत वासुरी की धुनि खोलै ।
 त्यो पदमाकर ये इतै गोरस लै निकसै यो चुकावत मोलै ॥
 प्रेम के पथ सु प्रीति की पैठ में पैठत ही है, दशा यह जोलै ।
 राधामई भई श्याम की सूरति श्याम भई भई राधिका डोलै ॥

तिय वैठी पिय को पहिरि, भूषण बसन विनाल ।

समुक्ति परत नहिं सखिन क्से, को तिय को नंदलाल ॥

सूचना—लीलाहाव और आहार्य्य में थोडाही अन्तर है, जहाँ प्रिया और प्रीतम दोनों एक साथही रूप पलटते हैं वहाँ लीलाहाव जानिये और जहाँ उनमें से केवल एकही रूप पलटे वहाँ आहार्य्य मान जानिये कतिपय कवियों ने आहार्य्य को अनुभाव का एक उपभेद माना है । यथा—

गुच्छा विच विच कुसुम कली के ।

आहार्य का उदाहरण ।

श्याम रंग धारि पुनि वांसुरी सुधारि कर पीत पट पारि बाणौ
सुनावेगी । जरकसी पाग अंनुराम भरे शीश वाधि कुंडल किर्रीटह
वि दरसावेगी ॥ याही हेत ररी अरी हेरनि हौ वाट घाकी केयो
पह को श्रीर भुरावेगी । सकल समाज पहिचानेगो न केह भाति
वह बाल घजराज बनि आवेगी ॥

(२) विहतहाव ।

विहत पिया के मिलतहू, बोलति नहि बस लाज ।
लाज बसहिं चुप है रही, मिलत आज ब्रजराज ॥ यथा—
सीस कहै परि पाय रहौ, भुज यो कहै अक तें जानन दीजै ।
जीह कहै बतियांहि कियो करौ, शौन कहै उनही की सुनीजै ॥
नैन कहै अवि सिधु सुधारम हौ, निसि वासर पान करीजे ।
पायहु प्रीतम, चित्तन चैन, यौ भायतो एक कहा कहा - कीजै ॥

(३) विलास ।

रिझायती पिष भावती, करि करि विरिष विलास ।
मनमोहन मनहरण को, मंद मंद क्रिय हास ॥ यथा—
समुझि श्याम को सामुहै, करत वार बगार ।
मनमोहन मन हरण को, लगी करन शृंगार ॥

(५) विच्छिन्ति ।

विच्छिन्न थोरइ वनक में तरुणि महा छवि देत ।
एकहि मृग मद बिंदु सों, मन हरि को हरि लेत ॥ यथा—
बंदी भाल तमोल मुख, सीस सिलसिलेवार ।
दग आंजे राजेश्वरी, साजे सहज सिंगार ॥

(६) विभ्रमहाव ।

विभ्रम भूपण भूलि कै, जलट पलट कहूँ धार ।
पहिरि कंठ विच किंकिणी, कस्यो कमर विच हार ॥
दूताह श्री रघुनाथ वचे दुलही सिय सुन्दर मंदिर मारहीं ।
गावति गीत सबै मिलि सुन्दर वेद युवा जुरि विप्र पढ़ाहीं ॥
राम को रूप निहारत जानकी ककण के नग की परदाहीं ।
यातें सबै सुवि भूलि गई कर टेकि रही पल टारति नाहीं ॥

(७) क्लिक्कित ।

रोप हास भय रस इकत, सो क्लिक्कित रीति ।
चढ़त भौह धरकत हियो, हँसति जनावति प्रीति ॥

(८) कुट्टमितहाव ।

मिथ्या रोंप जनावती, सो कुट्टमित कहात ।
करि करि नाही थकि रही, पिया न मानी वात ॥
कर ऐंचत आवत ईची, तिय आपुहि पिय ओर ।
भूठिहुं रूसि रहै छिनक, छुवत छरा को छोर ॥

(९) विव्बोकहाव ।

विव्बोकहि निज पीय को, करै निरादर वाल ।
मैं वेटी बृषभानु की, तुम अहीर के लाल ॥ यथा—

ए अहीर वारे बोसो जोरि कर कोरि कोरि विनय सुजायो बलि
वासुरी बजावे जनि । वासुरी बजावै तो बजाव मो बजाव जाने बड़ी
बड़ी आंखिन तें एकटक जावे जनि ॥ लावे है तो लाव टक तोप मोसों
कहा काम वेर वेर कोरि कोरि मेरी पौर आवे जनि । आवे है तो आव
आवो कबूल्यो पर मोरे गोरे गात में तू फारो गात क्वावे जनि ॥

दानी भये नये मागत दान हो जानि है कस तो धधन जैहो ।
 दूटे छरा बद्धरादिक गोधन जो धन है सो सबे धन देहो ॥
 रांकत हो यन मे " रसखानि " चलायत हाय धनो दुख पैहो ।
 जैहै जो भूपण काहू तिया को, तो माल छला को लला न विकेहो ॥
 न्हातई न्हात तिहारई स्याम कलिप्रियो श्याम भई बहते है ।
 धोयेहु धोयहो यामे काहू तो यहै रंग सारिन मे सरसे है ॥
 मायेरे अग को रग काहू यह मेरे सु अगन मे लागि जैहै ।
 हैज छबीले छुयोगे जो मोहि तां गातन मेरे गुराई न रहै ॥

(१०) मोटायितहाव ।

मोटाइत मुनि पिय रुथा, मज्जति अति अनुराग ।
 दृगानि मूढि मोहित तिया, भूरि सराहत भाग ॥

रूप दुह को दुहन सुन्यो सु रहै तब ते मनो सग सदाहो ।
 ध्यान मे दोऊ दुहन जयें हरयें अग अग अनग उत्राहीं ॥
 मोहि रहे कवके यो दुह पदमाकर और कछु सुधि नाही ।
 मोहन को मन मोहनी में यस्यो मोहनी को मन मोहन माहीं ॥

वसी करन जब ते सुन्यो, श्याम तिहारो नाम ।
 दृगन मूढि मोहित भई, पुजकि पसीजत वाम ॥

(११) हेलाहाव ।

करत ठिठाई पीय सों, हेला हाव सुधार ।

पारन विधि हरिहर लहै, तिन सों गुंथवत वार ॥

फाग के भीर अहीरन त्यो गहि गोविंदे जै भई भीतर गोरी ।
 भाई करी मनकी " पदमाकर " ऊपर नाय अवीर की भोरी ॥
 छीन पितम्बर कम्मर ते नु विदा दई मोडि कपालन रोरी ।
 नैन नचाइ कही मुसुन्याय लजा फिर आशुषो खेलन होरी ॥

(१२) बोधकहाव ।

बोधकहाव कायिकानुभाव और क्रिया विदग्धा के अन्तर्गत
 ते होता है । इसका वर्णन पहिले हो चुका है ।

संचारीभाव ।

थाई भावन को जिते, अभि मुख रहै सिताव ।
 जे नव रस में संचरै, ते संचारी भाव ॥
 थाई भावन में रहत, या विधि प्रगट विलात ।
 ज्यों तरंग दरियाव में, उठि उठि तितहि समात ॥
 थिर है थाई भाव तब, परिपूरण रस होत ।
 थिर न रहत रस राज छौं, संचारिन के गोत ॥
 थाई संचारीन को, है इतनोई भेद ।
 ते संचारिन के कहत, तैतिस नाम निवेद ॥

भा०—स्थाईभाव में जो विद्यमान रहते हैं और सम्पूर्ण नवरसों में जल की तरंग (लहर) की भाँति उत्पन्न होकर फिर विलात अर्थात् उन्नी में विलीन हो जाते हैं तथा समस्त भावों में जिनका संचार है वेही संचारीभाव कहलाते हैं नीचे लिखे अनुसार वे तैतिस प्रकार के हैं । ये भाव स्थिर नहीं रहते चंचल होते हैं (रसरज=पारा)

कहि निरवेद, ग्लानि, शका, त्यो असूया, श्रम, मद, धृति, आलस, विपाद, मति, मानिये । चिन्ता, मोह, सुपन, विबोध, स्मृति, अमरख, गर्व, उत्सुकता, सु अवहित्य, ठानिये ॥ दीनता, हरप, ब्रीडा, उग्रता, सु निद्रा, व्याधि, मरण अपस्मार, आवेगहु, आनिये । ग्राम, उन्माद, पुनि जडता, चपलताई तैतिसों वितर्क, नाम याही विधि जानिये ॥

(१) निर्वेद ।

तिरस्कार संसार सों, सो निर्वेद कहात ।
 सब तजि अब तौ सेइये, माधव पद जल जात ॥

भा०—विपत्ति, ईर्ष्या अथवा किसी खेद के कारण ज्ञान पैद होने से निज शरीर तथा सासारिक सम्पूर्ण अनित्य पदार्थों का तिरस्कार करना निर्वेद भाव है । यथा—

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिह पुर को तजि डारौ ।
 आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख नन्द की गाय चगय विसारौ ।

नैनग सों रस खानि कबै प्रज के घन बाग तड़ाग निहारौं ।
 फोटिभ हू फलधौत के घाम करीज के कुजन ऊपर धारौं ॥
 भयोन कोऊ हांडगो, मो समान भति मन्द ।
 तजे न अचलौं विषय विष, भजे न दशरथ नन्द ॥
 तु० रा०—सब परिहरि रघुवीरहि, भजौं भजहि जेहि सन्त ।
 अख प्रभु कृपा करहु इहि मांती ।
 सउ तजि भजन करौं दिन राती ॥

(२) ग्लानि ।

आधि व्याधि के दुःख सों, उपज ग्लानि मन माहिं ।
 धिक जीवन या जगत में, जहँ एकहु सुत नाहिं ॥

भा०—आधि व्याधि जैसे लुधा, तृषा, अथवा रतिश्रमादि के कारण अग शिथिल होने को ग्लानि कहते हैं, इसकी शिथिलता (विह्वलता) में स्वरभग तथा कपादिक भी होता है । यथा—

तु० रा०—भई ग्लानि मोरे सुत नाहीं ।

(३) शंका ।

इष्ट हानि दुर्नाति तैं, हो मन में अति शक ।
 चौथ चांद भादों लखे, रगिहै कहू फलक ॥

भा०—निज दुर्नाति तथा मूरता अथवा औरही किसी कारण से इष्ट हानि के शोक को शका कहते हैं । यथा—

तु० रा०—गिवाहिं विलोकि सगकेउ मारु ।

तैसी चेटकनि चेंरी, ताके चित्त को चहा कियो । राधिका की कहवत
कहि दीजां मोहन सों रसिक शिरोमणि कहायथौ कहा कियो ॥

जैसे को तैसो मिलै, तवहीं जुरत सनेह ।

ज्यों जिभग तन श्याम को, कुटिल कूवरी देह ॥

तु० रा०—तव सिय देखि भूप अभिलाखे, कूर कपूत मूढ मन माखे ॥

(५) श्रम ।

अति गति ते जब काहु के, होवै श्रम गंभीर ।

द्वन्द युद्ध देखहु सकल, श्रमित भये अति वीर ॥

भा०—मार्ग क्रमणादि परिश्रम जन्य थकावट से स्वेदादि निकल
पुनः तत्कार्य की अनिच्छा को श्रम कहते हैं । यथा—

पुर तें निकसी रघुवीर घधू धरि धीर दिये मग मेढग द्वै ।

भ्रूलकी भरि भालकनी जल की पट्ट सुखि गये अधराधरवै ॥

फिर वृभक्ति है चलनोऽव कितो पिय पर्ण कुटी करिहौ कित है ।

तिय की लखि आतुरता पिय की अखिया अति, चारुचर्ली जलज्वै ॥

श्रमित भूप निद्रा अति आई ।

थके नयन रघुपति छवि देखी ।

(६) मद ।

मद उपजै धन रूप तें, कै यौवन मद पान ।

नहीं आजु ससार में, योधा मोहि समान ॥

भा०—धन, यौवन, स्वरूप तथा मदिरादि सेवन से मद उत्पन्न
होकर असगत वाक्यों का कहना तथा अनुचित वताव करना मद
कहलाता है । यथा—

धन मद यौवन मद महा, प्रभुता को मद पाय ।

तापर मद को मद जिन्हें, को त्यहि सकै सिखाय ॥

तु० रा०—जग जोधा को मोहि समाना ।

रण मद मत्त निशाचर डर्पा ।

(७) धृति ।

धृति साठस अरु ज्ञान तें, उपजत हिय महँ आय ।

एक दिना नहि एक दिन, दिन फेरहि रघुगय ॥

उपाय एकौ चिन्त वै चढ़ै नहीं ॥ कैसी करीं कहाँ जाऊँ कासों कहीं कौन
सुनै कोऊ तो निकासौ जासो दरद बढ़ै नहीं । येरी मेरी वीर जैसे तैसे
इन आंखिनतें कड़िगो अवीर पै अहीर को कढ़ै नहीं ॥

तु० रा०—राम राम रट विकल भुवावू ।
अति विषाद बस लोग लुगाई ।

(१०) मति ।

नीति निगम आगमन ते, उपजत सुमति सुचार ।
रसना जो भव तरण चहु, राम नाम उच्चार ॥

भा०—मिथ्या धर्म होने पर भी सुनीति ज्ञान का होना मति
सचारी है । यथा—

बादही बाद बढ़ी के बकै मति खोर दै बज विपै विपरी को ।
मानिले या पदमारु की कही जो हित चाहत आपने जीको ॥
शम्भु के जीव को जीवन मूरि सदा सुखदायक है सबही को ।
रामही राम कहै रसना कसना ? तू भजे रस नाम सही को ॥

तु० रा०—भयो ज्ञान उपजो नवनेहा ।

(११) चिन्ता ।

चिन्ता चित हो अकित जब, धिरता बिन मति भोर ।
चिन्ता कौनहु भांति की, तात करिय जनि मोर ॥

भा०—जहाँ किसी बात की मन में चिन्ता होती है उसे ही चिन्ता
कहते हैं । यथा—

भोगहिं भुखात हैहै कदमूल खगत हैहै दुति कुमिलात हैहै मुख
जल जात को । प्यादे प्रभ जात हैहै मग, मुरभात हैहै थकि जैहै घाम
लागै श्याम कृष्ण भगत को ॥ पडित प्रवीण कहै धर्म के धुरीन पेसे मन में
न राख्यो पीन प्रन राख्यो तात को । मातु कहै कोमल कुमार सुकुमार
भोरें छौना हैहै मोवन विद्वाना करि पात को ॥

तु० रा०—चितवत चकित चहु दिशि सीता ।
सुमिरि-पिता पन मन अति कोभा ।
कहै गये नृप किशोर मन चीता ।

(१२) माह ।

मोह, आपने देह को, ज्ञान रहत जब नाहिं ।

निर्मोही की मीति में, गोपी अग्नि बिलखाहिं ॥

भा०-विरह, दुःख, वितर्कियों ने जब कपो शरीर का शत
रहे उसे मोह सचागे कहते हैं । यथा—

मोहत मोहि रक्षा कब को कब की वद मोहिनी मोहि रही है ।

तु० रा०—मुनि अति विकल मोह मति नाठी ।

लीन्ह लाय उर अनक जानकी ।

(१३) स्वप्न ।

स्वप्न स्वप्न को देखिवा, वरणत हैं कवि लोग ।

सपने में देरि मिलि गये, जागे बढ़यो विरोग ॥

भा०-निद्राविस्था में किसी पदार्थ के ज्ञान को स्वप्न संचारी
कहते हैं । यथा—

सोयत आञ्जु खली सपने छिज देव जू आनि मिले वनमाळी ।

जोलो उठी मिलिवे कहें धाय सुहाय भुजान भुजान पै घाळी ॥

वालि उठे ये पपीगन तो लगि पीव कहाँ कहि फूर फुचाळी ।

सम्पति सो सपने की भई, मिलिवे ब्रजराज को आञ्जु को आळी ॥

क्यो कम्पि भूठी मानिये, मयि सपने की बात ।

जु हरि दृश्यो मोवत हियाँ, सो न पाण्यत प्राप्त ॥

तु० रा०—दिन प्रति देखहु रानि कुसपने ।

सपने घानर लका जारी ॥

(१४) विबोध ।

मल १५ बोध है जागियो, वरणत मति अवशत ।

अनुरागी लागी हिये, जागी बड़े मधात ॥

भा०-निद्रा की विपरीत अवस्था को विबोध संचारी का

लखन निम्न विगत सुनि, प्रकृत जिखा भुनि कान ।

त पहिले जगत, प्रति, जागे राम मुजान ॥

विगत निशा रघुनायक जाने ।

कैं गिनती सी इती गिनती दिन तीनक लों बहु धार गुनाई ।
 रवो पद्मगाफर जोह मया करि तोहि दया न दुखान की आई ॥
 मेरो हरा ह्य हार भयो अय नाहि उनारि उन्ह न दिखाई ।
 ह्यार्ई न नू कयहूं बनमाल गोपाल की वा पहिरी पांगई ॥

मुख मलीन तन छीन छवि, परी संज पर दीन ।
 लेत फयो न सुधि सांघरे, नेही निपट नवीन ॥
 सु० रा०—आपनि दाख्य शीनता, कहेउे सबहि शिर नाह ।
 पाहि नाथ कहि पाहि गुनाई ।

(२१) हर्ष ।

हर्ष मिलतही इष्ट के, हियो जात है फूल ।
 सिय हिय हर्ष न जाय कहि, जान गौरि अनुकूल ॥

भा०—जहां किसी कारण से चित्त को आनन्द प्राप्त हो, आनन्द सूचक पुलकायली तथा प्रस्वेद का होना हर्ष सचारी कहलाता है ।

गृह गृह वाज वधाव शुभ, भगटे प्रभु सुखकव ।
 हर्षवत सय जेहहि तहें, नगर नारि नर वृन्द ॥

सु० रा०—हरपि राम भेटेउ हनुमाना ।

हर्षे जनु निज निधि पहिचाने ॥

(२२) ब्रीड़ा (लाज)

घीटा फौनहु हेनु ते, रहत लाज उर छाय ।
 मुख नवाय सकुचाय तिय, रही सु-धूँघट नाय ॥

भा०—किसी कारणे यश-लाज (लज्जा) उत्पन्न होने को ब्रीड़ा सचारी कहते हैं । यथा—

सु० रा०—गुरजन लाज समाज बडि, देखि सीय सकुचानि ।

बहुरि बदन धिधु अचल ढोंकी । पिय तन चितै भौह करि बांकी ॥
 राजन मंहु तिरौके नयननि । निज पति कहेउ तिनहि सिय सयननि ॥

(२३) उग्रता ।

निरद्वैपन है उग्रता, नहीं दया की ठाँउ ।

शिव धनु भंजनहार कहें, यमपुर अबहि पठावें ॥

भा०—निंदेयपन अर्थात् हृदय में दया का संचार न होना ही उग्रता संचारी कहलाना है। यथा—

एक बाग काताहु किन होई।

(२४) निद्रा।

शयन कटावत सोइशो, वहै सुनिद्रा होय।

पिया वाट जोहत तिया, रही पलंग पर सोय ॥

भा०—शयन कर्ना (संता) निद्रा संचारी कहलाना है। यथा—
नु० रा०—ते मिय राम साथी मोये।

(२५) व्याधि।

व्याधि विरह कामादि तें, तन मतापित छाम।

सुत विद्युरत व्याकुल भये, दगरथ के के नाम ॥

भा०—विग्रहवश वा कामादि वा किसी अन्य व्याधि के कारण रोगादि संचार को व्याधि संचारी कहते हैं। यथा—

दूरही ते देखत में विधा वां वियोगिनि की आई भले भाजि ह
इलाज मदि आवैगी। कहै पदमाकर सुनो हो घनश्याम जाहि चेत
कह जो एक आहि कदि आवैगी ॥ सर सरितान को न सूखत लगै
देर पती कहु जुलमिन ज्वाल वादि आवैगी। ताके तन तापकी कहो
कहा वात मेर गातहि ह्रुवां तां तुम्हें चाप चदि आवैगी ॥

कव को अजब अजार में, परी वाम तन छाम।

तित कोऊ मत लीजियो, चन्दोदय को नाम ॥

नु० रा०—देखी व्याधि असाधि नृप, पन्थो धरणि धुनि माथ।

कहत परम आरत वचन, राम राम रघुनाथ ॥

यह कुरोग कर औपधि नाही। अति परिताप सीय मन मा

(२६) मरण।

परनो मूर सतीन को, कहते सुजस के हेत।

सती सुलोचन हो गई, रही कीर्ति अति सेत ॥

भा०—शरीर से प्राण वायु के निकल जाने को मरण कहते हैं
जानकी को सुनि आरत नाद सुजानि दशानन की छलहाई।

रावण पेसे महा रिपु सों अति युद्ध कियो अपने बलसाई ।
सोहत श्री रघुराज के काज पै जीव तजै तो जटायु की नाई ॥

तु० रा०—राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम ।
तन त्यागो दशरथ नृपति, गवने सुरपति धाम ॥

(२७) अपस्मार (मूर्च्छा)

अपस्मार दुःखादि तें, होत कम्प भूपात ।
हरि वियोग तें राधिका, धरणि पछागे खात ॥

भा०—दुःखादि सहन करने तथा अन्य किसी कारण से कम्पादि होकर पृथ्वी पर गिरने, मुख से फेन और अधिक स्वासादि निकलने अर्थात् अपस्मार (मृगी) रोग की सदृश अवस्था हो जाने को अपस्मार सचारी कहते हैं । यथा—

लखि विहाल एकै कहत, भई कहु भयभीत ।
इकै कहत मिरगी लगी, लगी न जानत प्रीत ॥
तु० रा०—अस कहि मूर्छि परेउ महिराऊ ।

(२८) आवेग ।

आवेगहि चलि परत भट, भय तें वा अति नेह ।
सुनि आहट पिय पगनि तिय, भभरि भगी विच गेह ॥

भा०—अत्यन्त भय वा अधिक स्नेह से आतुरता के साथ उचलनाही आवेग सचारी कहलाता है, इसी को सन्नम भी कहते हैं । यथा—

लक्ष्मन दीख उमाकृत वेपा । चकित हृदय भ्रम भयउ विशेषा ॥
पितु प्रण समुक्ति बहुरि मन क्लोभा ।
सुनत श्रवण वारिधि बधाना । दशमुख बोलि उठा अकुलाना ॥
बाधेउ वननिधि नीरनिधि, जलधि सिंधु वारीश ।
सत्य तोय निधि पकानेधि, उदधि पयोधि नदीश ॥

(२९) त्रास ।

त्रास कौनहू अहित तें, उपजत हिय भय आय ।
सुनत तिहारी वात रुप, त्रसित शत्रु समुदाय ॥

ए ब्रजचन्द गोविन्द गोपाल सुनो न क्यों केते कलाम किये मै ।
 त्यो पदमाकर आनन्द के नैद हो नैद नन्दन जानि लिये मै ॥
 माखन चोरी कै खोरिन हे चले भाजि कछु भव मानि जिये मै ।
 दुरिह दोरि दुन्यां जां चहो तो दुरां किन मेर अंधेर हिये मै ॥

तु० रा०—भा निरास उपजी मन आसा ।
 भयउ विलम्ब मातु भय मानी ॥

(३०) उन्माद ।

अविचारी आचरण जो, सो उन्माद बखान ।
 छिन बोलति छिन रोवती, छिन छिन में मुस्कान ॥

भा०—विना विचारही आचरण करने को उन्माद कहते हैं ।
 अर्थ बकवाद करना, रोना, हँसना आदि उन्माद के स्वाभाविक लक्षण
 हैं । यथा—

आपहि आप पै रुसि रही कवह पुनि आपुहि आप मनावै ।
 त्यो पदमाकर ताकि तमालनि भेंटिबे को कवह उठि धावै ॥
 जो हरि रावरो चित्र लखै तो कह कवह हँसि हेरि गुलावै ।
 व्याकुल बाल सु आलिन मो कह्यो चाहै कछु तो कछु कहि आवै ॥

छिन रोवति छिन हँसि उठति, छिन बोलति छिन मॉन ।
 छिन छिन पर छीनी परति, भई दशा धौं कौन ? ॥

तु० रा०—अहहे तात दारुण प्रण ठाना ।

तुम सम पुरुष न मो सम नारी । यह सँजोग विधि रखा विचारी ॥
 लज्जिमन ममुभाये बहु भाती । पृकृत चले जता सद पाती ॥

नु० रा०-लोचन मगु रामहि उर आनी । दीने पलक कपाट सया
 यारि विलोचन वाचत पाती । पुलकगत आई भरि छाती
 राम लखन उर करवेर चीठी । रहिगे कहत न खाटी मीठी
 मुनि मग माझ अचल होइ घेसा ॥

(३२) चपलता ।

होत चपलता प्रेम तें, थिरता नहि उडगत ।

चकरींसी सकरी गलिन. छिन आवत छिन जात

भा०-अधिक अनुरागादि के कारण स्थिरता का न
 चपलता संचारी है इन्द्रानुसार प्राचरण करना इसका मुख्य
 है । यथा—

कौतुक एक लहो हरि हां पदमाकर यो तुम्हें जाहिर की में ।

कोऊ बड़े घर की टकुराइनि ठाढी न घात रहै छिनकी में ॥

भा०-कति है कबहुं भक्तगीन भरोखनि त्यो सिरकी सिरकी में

भा०-कतिही खिरकी में फिर थिरकी थिरकी खिरकी खिरकी में

नु० रा०-देखत नगर भूप सुत आये । समाचार पुरवानिन पाये ।

॥ धाये धाम काम सब त्यागी । मनहुं रक निवि लूटन लागी

करत मनोरथ आतुर धावा ।

प्रभुति चितय पुनि चितय महि ।

(३३) वितर्क ।

उर उपजत सन्देह जब, सो वितर्क हिय भास ।

लका निशिचर की पुरी, इत कत सज्जन वास ॥

भा०-किसी प्रकार का विचार करतेही चित्त में तर्क (सं
 उत्पन्न होना वितर्क कहलाता है । यथा—

धोस गुण गौरिकें सु गिरिजा गुसांन को आवत यहाही
 आनन्द इतै रहै । कहै पदमाकर प्रतापसिंह महाराज देखो देखि

दिव्य देवता तिनै रहै ॥ गेल तजि वैल तजि फैल तजि गेलन में हेत

उमापति हितै रहै । गौरिन में कान धो हमागी गुण गौरि
 घरी चारक लौ चकृत चितै रहै ॥

७ वीभत्स	ग्लानि
८ अद्भुत	आश्चर्य
९ शात	शम (निवेद)
१० वत्सल	स्नेह

स्थायीभावो के लक्षणों का सारांश उदाहरण सहित नीचे लिखा जाता है—

(१) रति ।

होत अपूरय प्रीति जहँ, सोई रति सह नेम ।
जनकनंदिनी को अचल, रघुपति पद नित प्रेम ॥

गूढ और अपूर्व प्रीति को रति कहते हैं रति देवता गुरु मुनि और राजा विषयक भी होती है, कोईर पुत्र विषयक भी कहते हैं सो तो वत्सल के अन्तर्गत है, रति के तीन भेद माने गये हैं । एकांगी (उत्तम) परस्पर (मध्यम) और स्वार्थवश (अधम) ।

उत्तम—मीन काटि जल धोइये, खाये अधिक पियास ।

तुलसी प्रीति सराहिये, मुये मीत की आस ॥

मध्यम—राधिका के हिय मूलत सावरो सावरे के हिय मूलति राधा

अधम—सुर नर मुनि सब की यह रीती ।

स्वार्थ लागि करै सब प्रीती ॥

गुरुविषयक—बदौं गुरु पद पक्ष परागा ।

सुखि सुवास संरस अनुरागा ॥

राजाविषयक—बंदौ अवध भुवाल, सत्य प्रेम जिहि राम पद ।

विलुरत दीनदयाल, प्रिय तन लृण श्व परि हरेउ ॥

हम सेवक स्वामी सियनाह ।

देवता विषयक—हरि हर पद रति मतिन फुतकीं ।

तिन कहँ सुखद कथा रघुवर की ॥

मुनि—बंदौ मुनि पद कज, रामायण जिन निर्मयो ।

सखरस कोमल मंजु, दोष रहित दूषण सहित ॥

रूप वचन वेढग कछु, लखि सुनि आवत हास ।
चारि पदारथ पाइये, एक भंग की आस ॥

भा०—कौतुकार्थ वचन वा रूप रचना से अह्लादयुक्त मनो-
विकार को हास कहते हैं । यथा—

चन्द्रकला चुनि चूनरी चारु दई पहिराय सुनाय सुहोरी ।
बेदी विगाखा रची पदमाकर अंजन आजि समाजि कै रोरी ॥
लागी जबै ललिता पहिरावन कान्ह को कचुकी केसर बोरी ।
हरि हरे मुसकाइ गही अचरा मुख दै वृषभानु किशोरी ॥

अति उदात्त करतुतिदार सख अवधपुरी की बामा ।
खोर खाय पैदा सुत करतां पति कर कछु नहि कामा ॥
सखी वचन सुनतै रघुनन्दन बोले मृदु मुसकाते ।
आपन चलन सिरपात्रहु प्यारी कहहु श्रान की बातें ॥
कोउ नहि जन्मे मातु पिता विन बँधी वेद की नीती ।
तुम्हरे तो महिते सब उपजै अस हमरे नहि रीती ॥

सूचना—हास के भी तीन भेद हैं १ उत्तम, २ मध्यम, ३ अधम
राम के २ भेद हैं १ स्मित २ हसित ।

१ स्मित—विना दात देख पडते हुए विकसित कपोलो से युक्त मंद
मुसकान को स्मित हास कहते हैं ।

२ हसित—कुछ दांत देख पडते हुए प्रफुलित कपोलो से युक्त हास
का हसित कहते हैं ।

मध्यम के दो भेद १ विहसित २ उपहसित ।

१ विहसित—अवमर पर मनोहर शब्द निकलने से योंहीं कुछ मुँह
सिकोडने और वदनराग दीखते हुए हास का विहसित
कहते हैं ।

२ उपहसित—नाक के फुलाने एवं कुटिल दृष्टि से देखने तथा प्रीय
सिकोडे हुए शब्द भरे हास को उपहसित कहते हैं ।

अधम के दो भेद १ अपहसित २ अतिहसित ।

१ अपहसित—सिर हिलते और आसू निकलते हुए उद्धत हास को
अपहसित कहते हैं ।

२ अतिहसित-शरीर के कँपने, अधिक आंसुओं के बहने और तालीं
वे ऊँचे स्वर से ठट्ठाकर हँसने को अतिहसित कहते हैं।

(३) शोक ।

अहित भये दुख होय जो, वहै शोक परकास ।

सब के प्यारे राम को, क्यों दीनों बनवास ॥

भा०-अहित के लाभ अथवा हित की हानि से हृदय में जा
दुःख उत्पन्न होता है उसे शोक कहते हैं। यथा—

मात को मोह न द्रोह दुमात को सोच न तात के गात दहे को ।

प्राण को क्रोध न बधु विक्रोध न राज को लोभ न मोद रहे को ॥

पते पै नेक न मानत श्रोपति पते में सीय वियोग सहे को ।
ता रनभूमि में राम कह्यो मोहि सोच विभीषण भूप कहे को ॥

तापस वेष विशेष उदासी । चौदह वर्ष राम बनवासी ।

सुनि तिय वचन भूप उरशोक । शशि कर लुचत विकल जिमिकोक ॥

काम वाम की ससम ती, भसम लगावत अंग ।

विनयन के नैनन जम्यो, कह्यु करणा को रग ॥

(४) क्रोध ।

अपमानादिक तें जहां, क्रोध हिये मजबूत ।

वक्ष अक्ष को फारिहौ, तौ अंजनि को पूत ॥

भा०-गुरु के किये हुए अपमानादि से उत्पन्न हुए मनोविकार
को क्रोध कहते हैं।

(५) उत्साह ।

अपर वीर को देखिके, चाव चढ़ै चित आय ।

मेघनाद को लखि लखन, हरपे धनुष चढाय ॥

भा०-उद्भट योद्धाओं को देख चित्त में जो सहर्ष चाव जगजगा
उठता है उसे उत्साह कहते हैं। यथा—

इत कपि रीठ उत राजसनहीं की चमू डका देत वफा गढ
ते कढ़ै लगी । कहै पदमाकर उमड जग ही के हित चित्त में कछूके

बाप चावकी चढ़ लगी ॥ बानन के बाहिरे को कर मे कमान कसि धाई
 घुर धान आत्ममान मे मढे लगी । देगते बनी है दुह दलकी चढा चढी मे
 एम दग हू प नेक लाली जो चढे लगी ॥

मेवनाद को जखि लखन, एग्पे वनुप चबाय ।
 दुखित त्रिभाषण दवि रटां, कछु फूले रघुगय ॥

(६) भय ।

भय त्रिकृत कछु रूप लखि, रक्षा कीन प्रतात ।
 लखि वाढत वामन तनहिं, वाढी बलि हिय भीति ॥

भा०—त्रैदव भयकर रूप का देखकर चित्त मे जो व्याकुलता पैदा
 होती है अथवा शरीर सङ्कित होता है उसे भय कहते हैं ।

तीन पैग पहुमी दई, प्रथमहिं परम पुनीत ।
 बहुरि बढत लखि चामनहिं, मे बलि कछुक सभीत ॥

तु० रा०—सीतहि सभय देगि रघुराई ।

। १. कहा अनुज सन सेन दुम्माई ॥

(७) ग्लानि ।

ग्लानि घृणित लखि वस्तु को, जई चित जाय धिनाय ।
 सूपनखाहिं विरूप लखि, सिय मुख लीन छिपाय ॥

भा०—किसी वस्तु के देखने, एवं स्मरण करने अथवा छूने
 चेत में जो घृणा उत्पन्न होती है उसे ग्लानि वा उग्रप्सा कह
 ॥ यथा—

“सूपनखाहिं विरूप लखि, रधिर चरवि बुबुवात ।

सिय हिय मे धिन की लता, भई सु द्वै द्वै पात ॥

(८) आश्चर्य ।

विस्मय युत लखि सुन कछु, अचरज रह उर छाया ।
 मृदुलगात क्यों सावरो, गिरिवर लीन उठाय ॥

भा०—देखने से छूने से स्मरण करने से अथवा कानों से कोई
 अद्भुत चरित्र सुनने पर हृदय में जो विस्मय उत्पन्न होता है उसे आश्चर्य

२ अतिहसित-शरीर के कंपने, अधिक आंसुओं के बहने और तालों
 वे ऊचे स्वर से ठुठकार हँसने को अतिहसित कहते हैं।

(३) शोक ।

अहित भये दुख होय जो, वहै शोक परकास ।
 सब के प्यारे राम को, क्यों दीनों बनवास ॥

भा०—अहित के लाभ अथवा हित की हानि से हृदय में जो
 दुःख उत्पन्न होता है उसे शोक कहते हैं। यथा—

मात को मोह न द्रोह दुमात को सोच न तात के गान दहे को ।
 प्राण को क्रोध न बधु विक्रम न राज को लोभ न मोद रहे का ॥
 एते पै नेक न मानत श्रीपति एते में सीय वियोग सहे को ।
 ता रनभूमि में राम कह्यो मोहि सोच विभीषण भूप कहे को ॥
 तापस वेप विशेष उदासी । चौदह वर्ष राम बनवासी ।
 सुनि तिय वचन भूप उर शोक । शशिकरं कृपत त्रिकल जिमिकोश ॥

काम वाम की खसम की, भसम लगावत अग ।
 त्रिनयन के नैनन जम्यो, कछु कटणा को रग ॥

(४) क्रोध ।

अपमानादिक तें जहां, क्रोध हिये मजबूत ।
 वक्ष अक्ष को फारिहौ, तौ अंजनि को पूत ॥

भा० शत्रु के किये हुए अपमानादि से उत्पन्न हुए मनोविकार
 को क्रोध कहते हैं।

(५) उत्साह ।

अपर वीर को देखिकै, चाव चढ़ै चित आय ।
 मेघनाद को लखि लखन, हरपे धनुष चढ़ाय ॥

भा०—उद्भट योद्धाओं को देख चित्त में जो सहर्ष चाव जगजगा
 उठता है उसे उत्साह कहते हैं। यथा—

इत कौपि रीछु उत राजसनहीं को चमू उका देत वंका गढ
 ते कटै लगी । कहै पदमाकर उमड जग ही के हित चित्त में कछुके

दूर धान आत्ममान में मढ़ें लगी । देखते वनी है दुह दलकी चढा चढी म
 एम दग हूँ पं नेक लाली जो चढे लगी ॥

मेघनाद को लखि लखन, हरपे अनुप चढाय ।
 दुखित विभाषण दवि रघों, कछु फूले रघुगय ॥

(६) भय ।

भय ॥ विकृत कछु रूप लखि, रघा कीन प्रतीत ।
 लखि वादत वामन तनहिं, वादी बलि हिय भीति ॥

भा०—वेदव भयकर रूप का देखकर चित्त में जो व्याकुलता पैदा
 होती है अथवा शरीर सशक्त होता है उसे भय कहते हैं ।

तीन पैग पहुमी दई, प्रथमहि परम पुनीत ।
 बहुरि बढत लखि वामनहि, भे बलि कछुक समीत ॥

तु० रा०—सीतहि समय देखि रघुशई ।

ग्लानि घृणित लखि वस्तु को, जहें चित जाय घिनाय ।
 सूपनखाहिं विरूप लखि, सिय मुख लीन छिपाय ॥

भा०—किसी वस्तु के देखने, एवं स्मरण करने अथवा छूने
 चित्त में जो घृणा उत्पन्न होती है उसे ग्लानि वा जुगुप्सा कह
 हैं । यथा—

सूपनखाहिं विरूप लखि, रुधिर भरवि सुचुवात ।
 सिय हिय से घिन की लता, भई सु द्वै द्वै पात ॥

(८) आश्चर्य ।

विस्मय युत लखि सुन कछु, अर्चाज रह उर ॥
 मृदुलगात क्यों सावरो, गिरिवर लीन उठाय ॥

भा०—देखने से छूने से स्मरण करने से अथवा कानों से कोई
 अत चरित्र सुनने पर हृदय में जो विस्मय उत्पन्न होता है उसे आश्चर्य

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरतर गावैं ।
जाहि अनादि अनन्त अराड अरोद अभेद सुवेद बतावैं ॥
नारद से सुक व्याम रटैं पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छाहरियां छत्रियां भरि छांछ पे नाच नचावैं ॥
बधु विरोध करो सिगरो भगरो निन होत सुभारस चाटत ।
मित्र करे करनी रिपुकी भरनी धर देखि न न्याउ निपाटत ॥
राम कहैं विष होत सुधा घर नागि सती पति साँ चित फाटत ।
भा विधना प्रतिकूल जबै तब ऊंट चबे पर कूकर ब्याटत ॥
देखत क्यो न अपूरव इदु में छै अरविंद रहे गहि लाली ।
त्यो पदमाकर कीर बधु इक मोती चुगै मनो है मतवाली ॥
ऊपर तें तमझाय रक्षो गवि की दयतें न दवै खुलि ख्याली ।
यो सुनि बैन सखी के विचित्र भये चित चक्रित से वनमाली ॥

(६) निर्वेद ।

हो विरक्त संसार साँ, सो निर्वेद विचार ।

यह असार संसार में, राम नाम है सार ॥

भा०-परिभ्रमादि के निष्फल होने पर सद्गति हित हृदय में जो पश्चात्ताप होकर वैराग्य उत्पन्न होता है उसे निर्वेद कहते हैं । यथा—

है थिर मदिन मे न रहो गिरिकन्दर में न तप्यो तप जाई ।
राज रिभाये न कै कविता रघुराज कथा न यथामति गाई ॥
यो पद्धितात कछु पदमाकर फासो कहौ निज मूरखताई ।
स्वारथहू न कियो परमारथ योहीं अकारथ वैस वितार्ड ॥
भोग में रोग वियोग संयोग मे योग मे काय कलेश कमायो ।
त्यो पदमाकर वेद पुराण पदञ्चो पढिकै बहु वाद बढ़ायो ॥
दौन्यो दुरास में दास भयो पै कहू विसराम को धाम न पायो ।
खायो गमायो सु पेसेही जीवन हाय मे राम को नाम न गायो ॥
या लकुटी कर कामरिया पर राजति हू पुर को तजि डारौं ।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख नन्द की गाय चराय विसारौं ॥
नैनन साँ रस खानि जबै ब्रज के वनवाग तड़ाग निहारौं ।
कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं ॥

मायुष्य हो तो वही रसखान बसा । माल गाकुल गात्र क ग्वारन ।
 जो पशु हो तो कहा बस भेरो चरो नित नद के धेनु भेकारन ॥
 पाहन हो तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरदर कारन ।
 जो खग हो तो वसेरो करो वही कालिदि तीर कदव की डारन ॥

(१०) स्नेह ।

पुत्रादिक की प्रीति जो, सोई नेह कहात ।
 गोद लिये अति प्रेम सों, हरि मुख चुम्बत मात ॥

रति स्थायीभाव सातवा भाग समाप्त ।

रसवत् अलंकार ।

अप्रगान जहँ रस अरु भावा । सप्त अलंकृत रसवत गावा ॥
 रसवत् प्रेयस ऊर्जस्वित, और समाहित जान ।
 भावोदय पुनि सधि अरु, शबलताहि पहिचान ॥
 ये अलंकार भूषण चन्द्रकादि ग्रन्थो के आधार से लिखे गये
 हैं । इनका अपराग भी कहते हैं ।

१ रसवत् ।

रसवत रस के अंग तें, प्रगट और रसभाव ।

जयति जयति योगिन्द्र मुनि, कुम्भज महा अनूप ।
 देखे जाके बुलुक में, कच्छप मत्स्य स्वरूप ॥

यहा अद्भुत रस का अंग मुनि विषयक रतिभाव है ।

तु० रा०-रूपा वारिधर राम खरारी । पाहि पाहि प्रण तारति हारी ॥

यहा वीररस का अंग कृष्ण रस है ।

श्री रघुवीर प्रताप तें, सिंधु तरे पापान ।

ते मतिमन्द जे राम तजि, भजहि जाय प्रभु आन ॥

सियहि विलोकि तक्यों धनु कैसे । चितव गरुड लघु व्याजहि जैसे ॥
यहां शृंगार का अंग वीररस है ।

अति सुकुमार युगुल मम वारे । निशिचर सुमट महा बल भारे ॥
यहां वात्सल्य का अंग भयानक है ।

नाग पाश बस भये खरारी । अविगत अलख एक अविकारी ॥
यहां अद्भुत का अंग शात है ।

२ प्रेयस् (प्रियतरं प्रेयः)

प्रेयस है अंग भाव को, कै कछु रस को भाव ।

भावालंकारहु कहै, याही को कवि राव ॥ यथा—

कव बसि मधि वाराणसी, धरि कोपीनहि चीर ।

हे हर शिव शकर जपत, फिरिहौ गगा तीर ॥

यहां चिता सचारीभाव का अंग गम स्थायीभाव है ।

सोह नवल तन सुन्दर सारी । जगत जननि अतुलित छवि भारी ॥

यहा शृंगार का अंग देवरति भाव है ।

भयउ कुलाहल नगर मझारी । आवा कपि लका जिहि जारी ॥

यहां भय से चिता और बढी ।

प्रेयस् का पुल्लिंग रूप प्रेयान् और स्त्रीलिंग रूप प्रेयसी होता है,
प्रेयान्=अति प्रिय पुष्टप, प्रेयसी=अति प्रिय स्त्री अर्थात् सीता प्रेयसी
और राम प्रेयान् हुए ।

३ ऊर्जस्वित (ऊर्जः बले)

रसाभास वा भावाभास, ऊर्जस अलंकार परकास ।

(अनौचित्य प्रवृत्तत्वे आभासो रस भावयोः)

अनुचित रस को रसाभास और अनुचित भाव को भावाभास
कहते हैं । इनमे से एक वा दोनो रहे, सोई ऊर्जस्वित अलंकार है ।
आभास झलक को कहते हैं ।

रसाभास ।

रसाभास अनुचित कथन, सीमा सों नहिं काम ।

चराचरहुं मर्याद तजि, भये सकल बस काम ॥

शृंगार रसाभास—१ मध के हृदय मदन अभिलाषा ।
 लता विलोकि नवहि तरु शाखा ॥
 २ प्रभु लङ्कमन पहुँ बहुरि पठाई ।
 ३ देखि रूप मुनि विरति विसारी ।
 बड़ी बाग लग रहे निहारी ॥

हास्य रसाभास—मुनत वचन विहँसे ऋषय, गिरि सभव तव देह ।
 नारद कर उपदेश सुनि, कहहु वसे को गेह ॥

करुण रसाभास—मुनि सुत वचन सनेहमय, कपट नीर भर नैन ।
 भरत हृदय जनु शूल सम, पापिनि बोली बैन ॥

रौद्र रसाभास—अति रिस बोले वचन क्रठोरा ।
 कहु जड जनक धनुष किहि तोरा ॥
 बेगि दिखाउ मूढ न तु आजू ।
 उलटौ महि जहँ लगि तुव राजू ॥

वीर रसाभास—१ वीर वृत्ति तुम धीर अङ्गोभा ।
 गारी देत न पावहु शोभा ॥
 २ कपि बल विपुल सराहन लागी ।

भयानक रसाभास—कर कुठार मे अकरण कोही ।
 आगे अपराधी गुरुद्रोही ॥
 उतर देत छाडो बिन मारे ।
 केवल कौशिक शील तुम्हारे ॥

बीभत्स रसाभास—भेष अमगल मगल राशी ।

अद्भुत रसाभास—रोम रोम हरि के रहत, किमि कौटिक ब्रह्मट ।

जात रसाभास—सुनु सतिभास कहैं महिप्रजा ।
 यहा बसत बीते बहु काला ॥
 ताते गुन गहौं जग माहीं ।
 हरि तजि किमपि प्रयाजन नाहीं ॥

सियहि विलोकि तक्यो धनु कैसे । अनिव गरुड लघु व्यालहि जैसे ॥

यहां शृंगार का अंग वीररस है ।

अति सुकुमार युगुल मम वारे । निशिचर सुभट महा बल भारे ॥

यहां वात्सल्य का अंग भयानक है ।

नाग पाश बस भये खरारी । अविगत अलख एक अरिकारी ॥

यहां अद्भुत का अंग शांत है ।

२ प्रेयस् (प्रियतरं प्रेयः)

प्रेयस है अंग भाव को, कै कछु रस को भाव ।

भावालंकारहु कहै, याही को कवि राव ॥ यथा—

कव वसि मधि चाराणसी, धरि कांपीनहि चीर ।

हे हर शिव शकर जपत, फिरिहौ गगा तीर ॥

यहां चिंता सचारीभाव का अंग शम स्थायीभाव है ।

सोह मवल तन सुन्दर सारी । जगत जननि अनुलित छवि भारी ॥

यहां शृंगार का अंग देवरति भाव है ।

भयउ कुलाहल नगर मभारी । आवा कपि लका जिहि जारी ॥

यहां भय से चिंता और बढी ।

प्रेयस् का पुल्लिंग रूप प्रेयान् और स्त्रीलिंग रूप प्रेयसी होता है।

प्रेयान्=अति प्रिय पुष्ट, प्रेयसी=अति प्रिय स्त्री अर्थात् सीता प्रेयसी

और राम प्रेयान् हुए ।

३ ऊर्जस्वित (ऊर्ज बले)

रसाभास वा भावाभास, ऊर्जस अलंकार परकास ।

(अनौचित्य प्रवृत्तत्वे आभासो रस भावयोः)

अनुचित रस को रसाभास और अनुचित भाव को भावाभास कहते हैं । इनमें से एक वा दोनों रहें सोई ऊर्जस्वित अलंकार है ।

आभास श्लोक को कहते हैं ।

रसाभास ।

रसाभास अनुचित कथन, सीमा सों नहिं काम ।

चराचरहुं मर्याद तजि, भये सकल बस काम ॥

रसाभास-१ मव क हृदय मदन आभलापा ।
लता विलोकि नवहिं तरु गाखा ॥
२ प्रभु लङ्कमन पहुँ बहु रि पठाई ।
३ देखि रूप मुनि विरति विसारी ।
वटी वार लग रहे निहारी ॥

हास्य रसाभास—सुनत वचन विहसे ऋषय, गिरि सभव तव देह ।
नारद कर उपदेश सुनि, कहहु वसे को गेह ॥

करुण रसाभास—सुनि सुत वचन सनेहमय, कपट नीर भर नैन ।
मरत हृदय जनु शूल सम, पापिनि बोली वैन ॥

सौंदर्य रसाभास—अति रिस बोले वचन कठोरा ।
कहु जट जनक धनुष किहि तोरा ॥
बेगि दिखाउ मूढ न तु आजू ।
उलटो महि जहँ लागि तुव राजू ॥

धीर रसाभास—१ धीर वृत्ति तुम धीर अङ्गमां ।
गारी देत न पावहु शोभा ॥
२ कपि बल विपुल सराहन लागा ।

मयांक रसाभास—कर कुठार में अकरण कोही ।
आगे अपराधी गुरुटोही ॥
उतर देत छाडो विन मारे ।
केवल कौशिक शील तुम्हारे ॥

बीभत्स रसाभास—भेष अमगल मगल राशी ।

अद्भुत रसाभास—राम राम हरि के रहत, किमि कोटिक ब्रह्मट ।

तान रसाभास—सुरु सतिभक्त कहँ महिपाला ।
यहा बसन बीते बहु काला ॥
ताने गुम रहौं जग माहीं ।
हरि तजि निमपि प्रयांजन नाहीं ॥

२ गुरु सन कहा करिय प्रभु सोई । रामहिं भरतहिं भेंट न होई ॥

३ भागे भालु बली भुख यूथा ।

४ प्रभु विलोकि सर सकहि न डारी ।

यकित भये, रजनीचर-भापी ॥

रसाभास+भावाभास ।

वन वन भीलन संग रमत, तुव वैरिन की वाम ।

अरु अरि तुव गुण गणत, नित प्रबल प्रतापी राम ॥

यहां भीलन संग रमत रसाभास, अरि गुण गणत भावाभास है, यही ऊर्जस्वित अलंकार है ।

(४) समाहित (समाधाने)

रस अरु भावहिं शांति कर, सोइ समाहित जान ।

जहा कोई रस वा भाव उत्पन्न होकर बढने नहीं पाता दूसरा भाव उत्पन्न होकर प्रबल हो जाता है उसे शांति वा समाहित अलंकार जानो । यथा—

पिय ठाढे भे मान लखि, तिय इत रही विजोय ॥

देखत हंसि दीन्हो ललन, तिय तव दीनी रोय ॥

यहां शृंगार रस का अंग कोप शांति है ।

देत चाप प्रापुहिं चदि गयऊ । परशुराम मन विस्मय भयऊ ॥

यहां गर्व की शांति है ।

अटादुरी में निरखि हरि, कौधा कीसी झंढ ।

चकित हो समुके बहुरि, लखि राधे की वाह ॥

यहां विस्मय को मति संचारी ने शांत किया ।

पुनि संभार उठी सां लका । जोरि पानि कर विनय ससका ॥

यहा वीररस का अंग क्रोध की शांति है ।

(५) भावोदय ।

भावोदय रसभाव जब, उदय होव रहि जाय ।

जहा अन्य सामग्री प्रबल होने के कारण रस वा भाव अक्षुरित रह जाता है तो भावोदय है । यथा—

चहत विचारि विचारि उर, कव मिलिहँ घनश्याम ॥

यहां शृंगार रस का अंग औत्सुक्य सचारी का उदय है ।

वेंदी पिय पट सो लगी, लीनी अली उतारि ।

बूड गई अवलोकि उन, सकुच सिंधु सुकुमारि ॥

यहा ग्रीडा सचारीभाव का उदय है ।

रावण आवत सुन्यो सकोहा । देवन तके मेरु गिरि खोहा ॥

यहा त्रास संचारीभाव का उदय है ।

(६) भावसंधि ।

रस अरु भावहिं सधि जो, भाव सधि सोइ जान ।

जब एक रस वा भाव मन को एक ओर और दूसरा दूसरे की खींचता है तब भाव सधि कहते हैं । यथा—

चलत वीर सग्राम को, लखि धिलखी निज बाल ।

अरुण वरण तन मे उठे, विपुल-पुलक ततकाल ॥

यहा रतिभाय और औत्सुक्य की सधि है ।

तीके निरखि नैन भरि गोभा । पितु प्रण सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥

यहा हर्ष और स्मृति की सधि है ।

दुहु समाज हिय हर्ष विपादु ।

यहा हर्ष और विषाद की सधि है ।

सकुचत कहि न सकत गुरु पाही । पितु दरशन लालच मन मांहीं ॥

यहा लाज और हर्ष की सधि है ।

(७) भाव शयलता ।

मिलत बहुते रसभाव जहँ, भाव शयलता जान ।

जहां अनेक रस तथा भावों की एक साथही उत्पत्ति हो सो शयलता है ।

वशीधर वनमाल धर, हरि उर माहिं रहाय ।

कित मे कित घह कित मिजन, सजनी ध्याँत बताय ॥

— कवि (संस्कृत) कवि (संस्कृत) कवि (संस्कृत) कवि (संस्कृत) कवि (संस्कृत)

मिय गोभा हिय वरणि प्रभु, आपनि दशा विचारि ।
 धौले शुचि मन अनुज मन, वचन समय अनुहारि ॥
 तात जनकतनया यह सोई । धनुष यश जिहि कारण होई ॥
 पूजन गौरि मखी लै आई । करति प्रकाश फिरत फुलवाई ॥
 जासु विलोकि अलौकिक गोभा । सहज पुनीत मोर मन झोभा ॥
 सो सब कारण जान विधाता । सुभग अग फरकहि सुनु भ्राता ॥
 रघुवसिन कर सहज सुभाऊ । मन कुपथ पग धरहि न काऊ ॥
 मुहि अतिशय प्रनीत जिय केरी । जिहि सपनेहु पर नारि नहेरी ॥
 जिनकी लहहि न रिपुरण पीठी । नहि लावहि पर तिय मन डोठी ॥
 मंगल लहहि न जिनके नारी । ते नरवर थोर जग मारी ॥

करत वतकही अनुज मन, मन सिय रूप लुभान ।
 मुख सरोज मकरद-द्वि, करत मधुप इव पान ॥
 इसमें मोह, वितर्क, हर्ष, मति, धृति इत्यादि अनेक भाव हैं ।
 हरि सगति मुखमूल सखि, पै परपची गाउँ ।
 तू कहु तौ तजि शक उत, देग वचाय द्रुत जाउँ ॥

यहा हरि से मिलने की उत्कंठा, गाव के प्रपची लोगो की शका,
 दीनता, धृति, आवेग, अवहित्या अनेक भाव हैं ।

सूचना—इन सात भेदों के अतिरिक्त किसी ने सकर नामक
 एक भेद और माना है । मेरी सम्मति में वह भाव शबलता के ही
 अन्तर्गत है । सकर का अर्थ है मिश्रण । यथा—

महि परत उठि भट लरत मरत न करत मायो अति घनी ।
 सुर डरत चौदा सहस्र निशिचर एक श्रीरघुकुल मनी ॥
 सुर मुनि समय अवलोकि माया नाथ अति कौतुक करे ।
 देखत परस्पर राम करि सग्राम गिपुदल लर मरे ॥

यहा वीर, भयानक और अद्भुत रसों का मिश्रण अर्थात्
 सकर है ।

शनि रस वदादि अलंकार आठवां भाग ममांत ।

रस दोष वर्णन ।

जिस रस के जो रस विरोधी हैं उनका उल्लेख नीचे करते हैं—

शृंगार के विरोधी—	कृष्ण, वीभत्स, रोद्र, वीर भयानक
हास्य	कृष्ण, वीभत्स, भयानक, रोद्र
करुण	हास्य, शृंगार
गौड	हास्य, शृंगार, अद्भुत, शात
वीर	शात, शृंगार, भयानक
भयानक	शात, शृंगार, हास्य
वीभत्स	शृंगार
अद्भुत	रोद्र
शात	रोद्र, शृंगार, वीर, हास्य, भयानक

ये विरोधी रस जहाँ देशभेद कालभेद रसमकर और अगाधिभाव द्वारा वर्णित किये जाते हैं वहाँ वे दूषित नहीं समझे जाते हैं ।

